तीखा सूरज

(उपन्यास)

चित्रलेखा प्रकाशन

[illegible], इलाहाबाद-१

तीखा सूरज

दयाशंकर

समर्पण

'जीजी जा रही हैं, अब कब आएँगी ?'

'अब नहीं आऊँगी।'

'जब हम लोगों के इम्तिहान शुरू हों, तब जरूर आ जाइएगा।'

'इम्तिहान तुम लोगों के गर्मियों में होंगे, और गर्मियों में तो आ ही नहीं सकती। बहुत परेशान होती हूँ गर्मियों में।'

'खैर, रक्षा बन्धन पर जरूर आ जाइए। तब तक तो बरसात शुरू हो जाती है। अच्छा।'

अब

इम्तिहान भी आएगा, रक्षा बन्धन भी आएगा, बहुत कुछ आएगा, प्रभा जीजी नहीं आएँगी—

उन्हीं को

जो एक माह की बच्ची के रूप में शेष हैं, हमारे निकट।

तीखा सूरज

१

पलंक का ठूंठ उगल देने के बाद उसे लगा जैसे उसकी व्यस्तता समाप्त हो गई है; खुद की लादी हुई व्यस्तता।

और अब उसे महसूस हुआ कि सूरज की तेज-तेज किरणें उसके सर-माथे को ऊपर से सीधे-सीधे बेध रही हैं। लायन्स क्लब के सौजन्य से बना यह नया बस-स्टाप झुलस गया है और सूरज की पूरी गर्मी उसके अन्दर भर गई है। सिटी बस का इन्तजार करती भीड़ पसीने में चुहचुहा रही है और परेशानी तथा एक अजीब खिझलाहट से वह भीड़ एक गुथा हुआ गुच्छा हो गई है; पपी के झबेरे तथा एक दूसरे से झगड़ते वालों की तरह।

सामने की कोलतार पुती सूनी सड़क पर निगाह पड़ी तो उसने देखा, सीधी पड़ रही तेज किरणों की वजह से वह कोलतार पहले की अपेक्षा

काफी पिघल गया है और उसमें साइकिल, रिक्शे, ताँगे और टैक्सी के पहियों के हल्के-हल्के खाँचे खुप गए हैं। सूरज की रोशनी उन खाँचों के बीच से उठकर हल्की-हल्की चमक पैदा कर रही है, कोई बड़ी चौंधियाहट नहीं है। पिछले दो घंटे से कोई बस या ऐसी ही कोई भारी गाड़ी इधर से नहीं गुजरी है और इसीलिए उसके दृष्टि-पथ के समानान्तर सड़क पर कोई बड़ा खाँचा नही है इस वक्त, बड़ी चौंधियाहट का।

सड़क पर दायें-बायें बस को टटोलती उसकी निगाहें अचानक अपनी कलाई पर बँधी पुरानी घड़ी पर चली गईं। आँखें मिच-मिचाकर उसने फिर देखा, गौर से। लेकिन उसकी आँखों के सामने धुँवाया हुआ घड़ी का डायल था, जैसे सुइयों के साथ-साथ डायल के ऊपर अंकित समय बताने वाला हर चिन्ह, सूरज की तेज गरमी से पिघल गया हो।

गरदन के पीछे से पसीने में तर अपने सफेद रूमाल को उतार कर उसने उसे दाएँ हाथ में पकड़े-पकड़े एक झटका दिया। भीगा हुआ रूमाल खुलकर झूल गया। थोड़ी देर तक वह नीची निगाह किए उस रूमाल का हिलना देखता रहा।

अचानक उस रूमाल को उसने अपनी मुट्ठी में झपट लिया। हँसा, पता नहीं कितनी देर से ये हरकतें कर रहा था वह। "खुद को व्यस्त करने का अच्छा तरीका निकाला नरेन", अपने आपसे ही कहा उसने और अपने से ज्यादा उम्र वाली घड़ी में इस बार काफी आत्मदृढ़ता से समय को देखा, गोकि वक्त अगर उस पुरानी घड़ी से बाहर निकल आए तो उसकी दायीं हथेली क्या करतब कर दिखाएगी, कहा नहीं जा सकता। क्याऽऽ बुरा वक्त आ गया है।

उस दिन का आत्मविश्वास, भय तो कभी-कभी उसे भी लगने लगता है कि एक दम्भ ही था, सिर्फ़ दम्भ, कोरा दम्भ। दम्भ ही सही, लेकिन आज भी जब उसे उस दिन का इल्म होता है, वह अपने आपको रोमांचित होने से नही रोक पाता। और सिर्फ़ रोमांचित ही नहीं होता वह, बल्कि दिमागी तौर पर संघर्ष करते-करते उसे इस बात का अहसास भी हो जाता

है कि उसका यह दम्भ उसकी शिराओं में एक नई स्फूर्ति इंजैक्ट कर देता है। उसका यह दम्भ तब फिर से आत्म-विश्वास में बदल जाता है।

डा० विनय के अचानक क्लास छोड़कर चले जाने पर क्लास में व्याप्त समूचे सन्नाटे को तोड़ती हुई एक आवाज जिस बुलन्दी से गूंज रही थी, क्या वह वाकई एक दम्भ मात्र थी।

"चले जायें डा० विनय के चमचे, बेचारे बाहर इन्तजार कर रहे हैं।' इसके तुरन्त बाद पूरे क्लास में जो खामोशी छायी, तो काफी देर तक छायी रही थी और वह उसी मुद्रा में अपनी बेंच पर खड़ा रहा था।

आगे की बेंच पर की तिलमिलाहट धीरे-धीरे मुखर हो उठी थी। शायद अपने पिता का अपमान न सहा गया उससे। पहले पीछे घूम गई थी सरिता, और तब झटके से खड़ी हो गई थी। निगाहों की इतनी भयानक मुठभेड़ सिर्फ उसी दिन हुई थी। सरिता का तना हुआ चेहरा देखकर एकबारगी नरेन भी कांप गया लेकिन तुरन्त ही वह किसी प्रस्तर मूर्ति की तरह दृढ़ हो गया था।

'कांग्रेच्यूलेशन मिस्टर नरेन, पढ़ाई में ही नहीं, लड़ाई में भी तुम्हारी फर्स्ट पोजीशन रही क्लास में। कोई तुम्हारे खिलाफ नहीं बढ़ सकता।' कहने के बाद सरिता ने जिस तरह से एक उड़ी-उड़ी सी निगाह पूरे क्लास पर डाली थी और जिस तरह से उसने मुँह बिचकाकर लेक्चर थिएटर के दरवाजे की ओर रुख किया था वह नरेन के हृदय में चुभ गया था। उसे वह कभी नहीं भूल सकता। तब वह ठगा-सा सरिता और उसकी सहेलियों का क्लास से बाहर जाना देखता रहा था।

और जिस दिन उसे यह महसास हुआ कि सरिता ने उसे उस दिन भरे क्लास में पहली बार 'तुम' करके सम्बोधित किया था तब तक बहुत देर हो चुकी थी। वह एम० ए० फाइनल कर चुका था और कक्षा की मेरिट लिस्ट उसकी आँखों के सामने पड़ी थी।

उस दिन का सरिता की आँखों का यकायक छोटा हो जाना। धौंकनी की तरह की, सीने पर चिपकी फाइल को भी पारकर आने वाली, तेज-

तेज सांसों को बेंच पर खड़े होने से लेकर कमरे से बाहर जाने तक के वक्त में, वक्त के ..खड़े होने की बजाय न गिन पाने की असमर्थता तब समझ में आई थी नरेन को। जी चाहते हुए भी नरेन भरे क्लास में मिली कांग्रेचुलेशन को सरिता के फर्स्ट पोजीशन पाने पर उसे अकेले में मिलकर भी वापस न कर सका था उस दिन। उस बार अपनी सैकिन्ड पोजीशन पर बधाई देने वालों को 'थैंक्यू' भी नहीं कहा उसने।

कोई लड़की आसानी से किसी को छोड़ सकती है, यह बात उसकी समझ में आ गई थी और वह अपने विश्वास के लिए इस सब की परवाह भी नहीं करता था। लेकिन जरा सी बात के लिए सरिता सब कुछ भुलाकर उसकी दुश्मन बन जाएगी यह उसने नहीं सोचा था। कोई बड़ा अपराध नहीं था उसका। कोई भारी अपमान नहीं किया था उसने डा० विनय का। वे सरिता के पिता थे लेकिन उसके भी कुछ थे। वह अच्छी तरह जानता था कि डा० विनय गुस्से को पाले रखने वाले व्यक्तियों में से नहीं थे। वह तो बात फँस गई थी वरना वह ही कुछ कभी कहता? हमेशा आदर किया है उसने डा० विनय का। उस दिन के बाद भी। शायद डा० विनय सब कुछ भूल भी गए थे। लेकिन अब जाहिर है कि सरिता उस दिन को नहीं भूली थी। डा० विनय का सबसे बड़ा चमचा तो वह ही था।

एक बात वह तब नहीं जानता था। वह खुद कम समझदार था या सरिता ही अभिनय बहुत अच्छा कर लेती थी। कभी उसे सरिता की आवेगात्मक भावनाओं का पता नहीं चला। वरना हो सकता था, वह उसे मना लेता। सब कुछ टाल जाता। वैसे भी वह सब कुछ तो भूल ही चुका था। अच्छा होता कि वह सब कुछ याद रखता। याद रखता और डा० विनय के घर आने जाने में उस दिन के बाद से फर्क महसूस करता। सरिता के बदले हुए तेवरों को पहचानता होता। सब कुछ धूल हो गया। सोचा था, टाप करने पर यहीं इसी यूनिवर्सिटी में लग जायगा और....

कोई उसे बड़ी देर से लपड़िया रहा था। लगातार। उसने आँखें खोल ली लेकिन तब भी उसे कुछ दिखाई नहीं दिया। आँखों के आगे गहरा

नीला अँधेरा छा गया था, एक्ज़ाम में लास्ट पेपर के वक्त के सरिता के आंचल की तरह।....

और तब ध्यान आया उसे कि वह घर से सुबह साढ़े आठ बजे सिर्फ चाय पीकर निकला था। नौ बजे से वह इस बस स्टाप पर खड़ा सिटी बस की प्रतीक्षा कर रहा है और अब सूरज आसमान फाड़े डाल रहा है। इस बीच बस के न आने के बावजूद अपनी जेब में पड़े पैसों के एक-एक सिगरेट के हिसाब से कम होते चले जाने की मजबूरी से बँधा वह किस क्षण अपने अन्दर और बाहर की गर्मी के एकात्म हो जाने के साथ-साथ वहीं गिर पड़ा, उसे कुछ नहीं मालूम। अभी भी जमीन पर पड़ा था वह और लोग उसके चारों ओर घिरे हुए थे। अपने ऊपर झुके एक-एक व्यक्ति का चेहरा उसने बड़े गौर से देखा लेकिन वह नहीं समझ सका कि वे लोग उस पर तरस खा रहे हैं या....

यकायक वह उठने लगा। अपनी पीठ और कमर में कुछ करकराता सा लगा उसे, किसी पुरानी पीर के पुनः उभर आने की तरह। उसे लगा कि उठ पाने में वह पहले जितना सक्षम नहीं है और उसका सर भी सुर-सुरा रहा है। लेकिन वह उठकर खड़ा हो गया, बस-स्टाप की खुरदरी दीवार का सहारा लेकर।

"मैं....भाई....लोगो....मुझे नौकरी के सिलसिले में एक इण्टरव्यू देने जाना है....साढ़े ग्यारह पर....क्या बस निकल गई....भाई साहब, क्या टाइम हुआ है,....प्लीज....।" नरेन लगभग रुआँसा हो गया था। वह देख रहा था कि किसी ने उसके एक सवाल का भी जवाब नहीं दिया। उसने अपने शब्द फिर बुदबुदाए लेकिन प्रतिक्रिया-स्वरूप उसके आस-पास के लोग इधर-उधर चले गए।

किसी ने उसके लिए कुछ नहीं किया। 'क्या सबकी जुबानें भी कुतर ली गई हैं?' चाहा कि जोर से चीखे वह लेकिन उसने महसूस किया कि अब उसके गले में कोई आवाज शेष नहीं रह गई है।

होठों के चिप-चिपेपन को अपने रूमाल से पोंछ देने की नियति के

साथ-साथ उसे ख्याल आया कि अब यह भी हो गया है उसे। एक बार निरीह हो जाने के बाद अब वह निरन्तर निरीह होता चला जाता है और तमाम जरूरी चीजें ऐन मौके पर भी भूला रहता है वह। मसलन पुरानी ही सही, उसके हाथ में घड़ी बँधी हुई है और कोई दूसरा न सही वह तो उस घड़ी का मिजाज जानता है।

लेकिन गरदन झुकाकर और हाथ उठाकर समय देख लेने के बाद उसे फिर मायूसी ने घर दबोचा। बस का इन्तजार भी बेकार है अब। बेकार।

धूप की चिल-चिलाहट की नरमी का कायल हुए बिना ही वहाँ से सरक लिया वह।

२

रात गहरा गई तो नरेन अपने ही घर में चोरों की तरह चुपचाप घुस आया। चुपचाप। जैसे सबेरे चाय पीने के बाद बिना किसी को बताए चुपचाप चला गया था, उसी तरह चुपचाप लौट आया। चुपचाप। बेहद थका हुआ। जैसे दिन भर अत्यन्त व्यस्त रहा हो।

अपना कमरा खोलकर वह उसके अँधेरे में समा गया। अँधेरे में ही उसने किवाड़ भेड़े और अनमने भाव से स्विच आन कर दिया। कमरा दूधिया सूरज की रोशनी से भर गया।

उसने बल्ब को जिसके अन्दर का उसे कुछ नहीं दीख रहा था, इस तरह घूरकर देखा मानों वह उसकी समूची रोशनी को अपनी आँखों में समेट लेगा।

लेकिन जल्दी ही उसकी आँखों में कातरता झलक आई। अभी-अभी रसोई में भी कुछ खटका हुआ था।

उसने जल्दी-जल्दी अपने कमीज और पैन्ट को उतार कर बिना धूल झाड़े रस्सी पर फेंक दिया और उस पर से चारखाने की लुंगी खींच ली।

रस्सी पर कुछ देर तक पैन्ट झूलती रही फिर अचानक टप्प से पैन्ट की जेब में से पिचका हुआ सिगरेट का पैकेट उतर पड़ा।

"बाप रे!" जैसे सिगरेट का यह डिब्बा ही विश्वयुद्ध का मूल आधार बनने जा रहा हो, इस आशंका से नरेन कांप गया और दौड़कर उसने वह पैकेट उठा लिया।

लगभग दौड़कर ही आलमारी का दरवाजा खोला उसने। ऊपर के खाने में उस पैकेट को एक कोने में छुपा दिया। "अब यह अधिक सुरक्षित है।" उसने सोचा।

आलमारी से हटा तो उसके पैरों पर कई कागज आ गिरे। उठाकर देखा। ये सब के सब उसके गुड एकेडेमिक कैरियर के सर्टीफिकेट्स थे। जैसे, पैरों पर औंधे होकर सबके सब अभयदान माँग रहे हों। "हमारा कोई कुसूर नहीं हुजूर, हम बिल्कुल निर्दोष हैं। लेकिन हम इत्ते के इत्ते सारे सर्टिफिकेट्स आपको नौकरी दिलाने में समर्थ नहीं हो पा रहे, फिर भी हमारी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। और कोई सेवा हो तो हम हाजिर हैं। हम आपके हैं। हमें सहेज कर रखिए। हम·····।"

दरवाजा खुला और तब नरेन की निगाह उधर दौड़ी। माधुरी थी। ओह!·····"तू अब तक सोई नहीं?"

माधुरी कुछ नहीं बोली। चुपचाप हाथ में पकड़ी थाली चारपाई पर रख दी। नरेन कुछ देर बिना बोले माधुरी और थाली दोनों को बारी-बारी से देखता रहा। फिर बोल पड़ा—"लगता है तूने अभी तक रोटी नहीं खाई।" और नरेन ने तेज-तेज नजरें माधुरी के चेहरे पर जमा दीं। माधुरी थोड़ा तिलमिला गई फिर तुरन्त ही उसका गला भर आया और गले के नीचे एक उच्छ्वास गटक लेने के बाद वह फूट पड़ी—

"तुम इतने रूखे क्यों हो गये हो भैया ?''''बड़े भइया और भाभी की बात जाने दो, लेकिन क्या तुम भी यही समझते हो कि मैं कुछ नहीं समझती ? मैं भी कुछ नहीं समझती ? मुझे भी बिना कुछ बताए सुबह-सुबह ही सिर्फ चाय लेकर चले गए।''''और उस पर अभी तुम बस की तरह कहोगे, मुझे बिलकुल भूख नहीं है, मेरा पेट भरा हुआ है''''वह रास्ते में एक कालेज का दोस्त मिल गया था जो अब कहीं'''', तुम चाहते हो कि मैं '''मैं भी उस पर विश्वास कर लूं'''भला''''।" शायद माधुरी रोने लगती लेकिन तभी नरेन को अचानक होश ने झटक दिया। सचमुच, वह आजकल बहुत रूखा हो गया है, अपनी प्यारी बहिन के लिए भी, मगर क्यों ? क्यों ?? ?? उसके पास कोई जवाब नहीं।

वह हँसने लगा और पीठ से पकड़कर उसने माधुरी को चारपाई पर बैठा लिया। "पगली कहीं की, पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है। मैंने कब कहा कि'''मुझे पता नहीं क्या कि मेरी बहिन है। भूखी बैठी होगी। वह तो'''वह तो आज ज्यादा काम में फँस गया, इतना व्यस्त रहा कि'''' खैर था। थोड़ा तू भी खा ले। ले।"

रूखा-सूखा उदरस्थ करने के बाद दोनों ने पुराने पीतल के बड़े वाले लोटे से थोड़ा-थोड़ा पानी पिया और तब लगा कि दोनों के चेहरे आदमियों के चेहरे हैं। थोड़ा-थोड़ा शान्त, प्रकृतिस्थ।

नरेन चारपाई पर लेट गया और माधुरी चुपचाप वहीं बैठी रही। थोड़ी देर बाद हल्के से माधुरी ने पूछ दिया—"तो जनाब आज दिन भर काम में व्यस्त रहे ?"

और तब नरेन को लगा, कि वह सब कुछ सबसे छुपा सकता है लेकिन अपनी इस बहिन से नहीं। उसे अपने अन्दर ही एक कसमसाहट का अहसास हुआ और वह धीरे-धीरे संयत स्वर में पूरे दिन की व्यथा-कथा माधुरी को सुना गया। सिर्फ बस स्टैंड पर अपने गिरने की बात वह माधुरी से भी छुपा गया। लेकिन उसका ध्यान आते ही उसे अपने बाहर-भीतर चारों ओर एक तेज गिलगिलाहट का अनुभव हुआ। लगा कि मस्तिष्क की

लेकिन जल्दी ही उसकी ग्रांखों में कातरता झलक ग्राई। ग्रभी-ग्रभी रसोई में भी कुछ खटका हुग्रा था।

उसने जल्दी-जल्दी ग्रपने कमीज ग्रौर पैन्ट को उतार कर बिना धूल झाड़े रस्सी पर फेंक दिया ग्रौर उस पर से चारखाने की लुंगी खींच ली।

रस्सी पर कुछ देर तक पैन्ट झूलती रही फिर ग्रचानक टप्प से पैन्ट की जेब में से पिचका हुग्रा सिगरेट का पैकेट उतर पड़ा।

"बाप रे !" जैसे सिगरेट का यह डिब्बा ही विश्वयुद्ध का मूल ग्राधार बनने जा रहा हो, इस ग्राशंका से नरेन कांप गया ग्रौर दौड़कर उसने वह पैकेट उठा लिया।

लगभग दौड़कर ही ग्रालमारी का दरवाजा खोला उसने। ऊपर के खाने में उस पैकेट को एक कोने में छुपा दिया। "ग्रब यह ग्रधिक सुरक्षित है।" उसने सोचा।

ग्रालमारी से हटा तो उसके पैरों पर कई कागज ग्रा गिरे। उठाकर देखा। वे सब के सब उसके गुड एकेडेमिक कैरियर के सर्टीफिकेट्स थे। जैसे, पैरों पर ग्रौंघे होकर सबके सब ग्रभयदान माँग रहे हों। "हमारा कोई कुसूर नहीं हुजूर, हम बिल्कुल निर्दोष हैं। लेकिन हम इत्ते के इत्ते सारे सर्टिफिकेट्स ग्रापको नौकरी दिलाने में समर्थ नहीं हो पा रहे, फिर भी हमारी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। ग्रौर कोई सेवा हो तो हम हाजिर हैं। हम ग्रापके हैं। हमें सहेज कर रखिए। हम''''।"

दरवाजा खुला ग्रौर तब नरेन की निगाह उधर दौड़ी। माधुरी थी। ग्रोह !''''"तू ग्रब तक सोई नहीं ?"

माधुरी कुछ नहीं बोली। चुपचाप हाथ में पकड़ी थाली चारपाई पर रख दी। नरेन कुछ देर बिना बोले माधुरी ग्रौर थाली दोनों को बारी-बारी से देखता रहा। फिर बोल पड़ा—"लगता है तूने ग्रभी तक रोटी नहीं खाई।" ग्रौर नरेन ने तेज-तेज नजरें माधुरी के चेहरे पर जमा दीं। माधुरी थोड़ा तिलमिला गई फिर तुरन्त ही उसका गला भर ग्राया ग्रौर गले के नीचे एक उसांस गटक लेने के बाद वह फूट पड़ी—

"तुम इतने रूखे क्यों हो गये हो भैया ?''''बड़े भइया और भाभी की बात जाने दो, लेकिन क्या तुम भी यही समझते हो कि मैं कुछ नहीं समझती ? मैं भी कुछ नहीं समझती ? मुझे भी बिना कुछ बताए सुबह-सुबह ही सिर्फ चाय लेकर चले गए।''''और उस पर अभी तुम कल की तरह कहोगे, मुझे बिल्कुल भूख नहीं है, मेरा पेट भरा हुआ है''''वह रास्ते में एक कालेज का दोस्त मिल गया था जो अब कहीं'''', तुम चाहते हो कि मैं''''मैं भी उस पर विश्वास कर लूं''''भला''''।" शायद माधुरी रोने लगती लेकिन तभी नरेन को अचानक होश ने झटक दिया। सचमुच, वह आजकल बहुत रूखा हो गया है, अपनी प्यारी बहिन के लिए भी, मगर क्यों ? क्यों ऽऽ ?? उसके पास कोई जवाब नहीं।

वह हँसने लगा और पीठ से पकड़कर उसने माधुरी को चारपाई पर बैठा लिया। "पगली कहीं की, पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है। मैंने कब कहा कि'''मुझे पता नहीं क्या कि मेरी बहिन है। भूखी बैठी होगी। वह तो''''वह तो आज ज्यादा काम में फँस गया, इतना व्यस्त रहा कि'''' खैर आ। थोड़ा तू भी खा ले। ले।"

रूखा-सूखा उदरस्थ करने के बाद दोनों ने पुराने पीतल के बड़े वाले लोटे से थोड़ा-थोड़ा पानी पिया और तब लगा कि दोनों के चेहरे आदमियों के चेहरे हैं। थोड़ा-थोड़ा शान्त, प्रकृतिस्थ।

नरेन चारपाई पर लेट गया और माधुरी चुपचाप वहीं बैठी रही। थोड़ी देर बाद हल्के से माधुरी ने पूछ दिया—"तो जनाब आज दिन भर काम में व्यस्त रहे ?"

और तब नरेन को लगा, कि वह सब कुछ सबसे छुपा सकता है लेकिन अपनी इस बहिन से नहीं। उसे अपने अन्दर ही एक खलबलाहट का अहसास हुआ और वह धीरे-धीरे संयत स्वर में पूरे दिन की व्यथा-कथा माधुरी को सुना गया। सिर्फ़ बस स्टैंड पर अपने गिरने की बात वह माधुरी से भी छुपा गया। लेकिन उसका ध्यान आते ही उसे अपने बाहर-भीतर चारों ओर एक तेज गिलगिलाहट का अनुभव हुआ। लगा कि मस्तिष्क की

सारी नसें आपस में टकरा गई हैं और एक विचित्र पीड़ा सी समूचे शरीर को सनसनाए दे रही है। नरेन एक लंबा मौन साध गया।

माधुरी भी चुपचाप पूरी बात सुनती रही। काफी देर तक वह भी असमंजस में पड़ी बैठी रही। फिर अपने आंचल में से एक पतला सा लिफाफा निकाल कर नरेन की ओर बढ़ा दिया उसने।

नरेन एकटक उस लिफाफे की तरफ देखता रहा। पागलों की तरह झपट कर उसे अपनी मुट्ठी में भर लिया। "नौकरी"!...नहीं नौकरी के लिए इण्टरव्यू का काल-लैटर !! उसकी आंखें हर्ष से चमक उठीं। फाड़ कर जल्दी-जल्दी पढ़ा, देशी शूगर मिल्स की ओर से था। कल को ही बुलाया है!

उसकी आंखों की चमक फिर यकायक बुझ गई। क्या फायदा ? कल भी उसे कोई बस न मिली तो ?

बुझी-बुझी आंखें सामने की दीवार को देख रही थीं, सामने से हथेली भर प्लास्टर खुद गया था और उसके बीचोंबीच एक छिपकली आ चिपकी थी। कीड़े-मकोड़ों को चटपट निगलती हुई।

"कहीं से....माधुरी, मुहल्ले में किसी के पास साइकिल है ?" अचानक ही पूछ बैठा नरेन। खुशी की कोई संभावना अभी मन के किसी कोने में शेष थी शायद।

"हो जाएगी", घूरते हुए माधुरी ने कहा।

"तब ठीक है। अब तू जा, सो जा। सुबह चाय पर जगा लेना। जा। जा।" नरेन को माधुरी पर बड़ा प्यार आ रहा था। एक वही तो है जो नरेन को थोड़ा बहुत समझती है घर भर में। और नरेन भी उसके लिए चिन्तित है; इण्टर कब को पास कर चुकी। भाभी ने यहीं आकर इण्टर का इम्तहान दिया था। माधुरी ? अगर न होती तो शायद नरेन हार जाता। यह रोज-रोज घर न आता। चला जाता तो चला ही जाता। घर वह किसके लिए वापस आता ?....

माधुरी चली गई थी। नरेन ने उठकर किवाड़े उढ़का दिए और फिर वह अपनी अलमारी तक गया। कुछ सफेद ताव और अपने सर्टिफिकेट्स का पुलन्दा फिर एक बार निकाला, और सिगरेट।

सिगरेट सुलगा कर वह फिर व्यस्त हो गया।

३

"तुमने फिर बेइमानी की, बेईमान कहीं के।"

"चलो-चलो रोग्रो मत, रोग्रो मत।"

"खाक चलें, मात हो रही है तुम्हारी।"

"मात ? कैसे। कहाँ…"

"तुम एक घर चल सकते हो सिर्फ", सुमन ने काले वाले बादशाह को उठाकर बग़ल से दो घर पीछे खिसका दिया। "यहाँ। और यहाँ मेरे घोड़े का जोर है। यहाँ ऊँट का। हो गई न मात ?" सुमन ने उँगलियाँ नचाईं।

"हाँ माँ। मात तो हो ही गई।" अशोक ने कुटिलता का भाव धारण करते हुए अपने बादशाह को बगल से फिर दो खाने आगे बढ़ा दिया. "मैं

यहाँ चलता हूँ।"

"तुम यहाँ नहीं चल सकते।"

"क्यों नहीं चल सकते ?"

"तुम्हें 'शह' लग चुकी है।"

"शह ?"

"हाँ"

"नहीं, अभी कहाँ लगी है। साले झूठ बोलता है।"

"झूठ तू बोलता है, और बेइमानी करता है।"

"माँ भी हाँ।"

"हाँ, हाँ क्या ! आज तक कोई बाजी जीती है तूने बिना बेइमानी के। चुगद कहीं का, बेईमान।"

"देख बे, जुबान संभाल कर बोल...."

"अरे, तो रौब किसपे जमा रहा है," कहते हुए सुमन ने चैसबोर्ड को उठाकर तिरछा फेंक दिया। इस पर अशोक गुस्सा गया और उसने खींचकर एक हाथ सुमन के माथे पर सीधे मारा। सुमन भी बेखबर नहीं था, झट से भिड़ गया अशोक से। दोनों गुत्थमगुत्था होकर तखत पर लोटने लगे।

अचानक सुमन तखत पर से नीचे फर्श पर लुढ़क पड़ा। फर्श के स्पर्श के साथ ही वह जोर-जोर से चीखने लगा।

चीख सुनकर रसोई में सुबह का नाश्ता बना रही अशोक की माँ तुरन्त उठकर बैठक में आ गई। कोठरी का दृश्य देखते ही वह चिल्लाने लगीं।

"हे भगवान ! इस घर में सत्यानाश ही सत्यानाश है। अरे कम्बख्तो ! तुम दोनों सोलह-सोलह साल के धींगड़े हो गए लेकिन अभी भी वही बचपना। बच्चों की तरह लड़ते-झगड़ते हो।" फिर अशोक का कान उमेठने लगीं, "तूने ही शैतानी की होगी।"...अच्छा, चलो उठो। नाश्ता-वाश्ता कर लो। चलो। उठो। चलो।...."

दोनों भी एक नंबर थे। चाय नाश्ता वे दोनों अपना-अपना बैठक में

ही उठा लाए और फिर से उनकी शतरंज की बाजी जम गई। फिर वही तू-तू मैं-मैं शुरू हुई।

तू साले···

तू साले····

यकायक सुमन की निगाह दरवाजे पर चली गई। माधुरी को अन्दर घुसते देखकर वह चुप हो गया। अशोक भी चुप हो गया। अशोक ने सुमन को कोहनी मारी तो उसने रसोई की ओर इशारा कर दिया। अशोक ने उचक कर देखा, "माधुरी!"

फिर वे दोनों खिड़की के पास सट कर खड़े हो गए। दोनों माधुरी को घूरने लगे। कभी-कभी वे एक दूसरे को देखते और मुस्करा देते।

थोड़ी देर बाद माधुरी चली गई और तब कहीं जाकर उन दोनों की तंद्रा टूटी।

"तुमने देखा", अशोक चिल्लाया।

"हाँ," सुमन खामोशी से बुदबुदाया।

"क्या?" अशोक भन्नाया।

"मौसी ने मेरी साइकिल उसे दे दी।" सुमन ने कमरे की छत की ओर ताकते हुए बड़े शहीदाना अन्दाज में कहा।

"हाय, हाय। तो इसमें रोने की क्या बात है, उसे क्या पता कि साइकिल तुम्हारी ही है। और अगर पता है भी तो शाम को वापस कर जाएगी। न देगी तो देखेंगे।"

सुमन ने कोई जवाब नहीं दिया। यूँ ही गुमसुम बना रहा। शायद माधुरी के शाम को आने की संभावना उसके भी दिमाग में थी।····

"माँ हमें बच्चा ही समझती हैं न सुमन?" अशोक ने मौन भंग किया।

"हाँ," सुमन पूर्ववत् था।

"मगर मैं बच्चा नहीं हूँ।"

"ऐंऽ"

"और तू क्या कहा करता है हर बार ?"

"क्या ?"

"कि आज तक तूने कोई बाजी जीती है बिना बेईमानी के ?"

"हां, हां । कौन सी बाजी जीती है तूने बिना...."

"अब जीतूंगा प्यारे । अब जीतूंगा ।"

"क्या ? कौन सी बाजी ?"

"अन्धे की बेटी !"

"अन्धे की बेटी ?"

"माधुरी ।" अशोक ने कहा ।

"माधुरी !" सुमन का मुंह खुला का खुला रह गया ।

४

नरेन साइकिल से उतरा तो बुरी तरह हाँफ रहा था। साइकिल पकड़े-पकड़े ही उसने गरदन घुमाकर दायीं ओर बरामदे में देखा, पूरा का पूरा खाली था। इकलौती बेंच पर कोई सफेद कपड़े पहिने चपरासीनुमा एक अधेड़ आदमी जरूर नजर आया उसे। वह आश्वस्त हुआ। चलो, मैं सबसे पहले आ गया। अब मुझे ज्यादा समय मिलेगा तो जरूर लोगों को इम्प्रेस कर लूंगा। हो सकता है, और किसी को बुलाया हो न हो। अगर ऐसा है तब तो यह नौकरी उसकी हो ही गई। सोचते-सोचते वह थोड़ा खुश हो गया।

साइकिल को जल्दी-जल्दी लाक करके वह आगे बरामदे की ओर लपका। माथे पर लुढ़क आए बालों को सीधे हाथ की उँगलियों से पीछे झटकारने के बाद वह बेंच पर बैठे व्यक्ति तक पहुँच गया।

"ए भाई, इधर कोई इन्टरव्यू-विन्टरव्यू...."

"इण्टरव्यू देने माने आए हो ?" चपरासी की कड़कदार आवाज सुनकर थोड़ा सहम गया नरेन ।

"हाँ, हाँ । लेकिन क्या मैं....क्या और लोग अभी नहीं आए ? कित्ते लोग बुलाए गए हैं ?" कहकर नरेन चुप हो गया । वह देख रहा था कि चपरासी टस से मस नहीं हुआ था, न उसके किसी सवाल का जवाब दे रहा था बल्कि उसे घूर-घूर कर देख रहा था ।

नरेन को लगा कि यह चपरासी बड़ा बदतमीज आदमी है । अभी भी उसे घूर-घूर कर देखे जा रहा है ! अगर नरेन की जगह कोई लड़की होती तो जरूर अब तक उसकी चप्पलें चपरासी के सर पर चटकना शुरू हो गई होतीं । नरेन का मुंह गुस्से से भर उठा ।

लेकिन उसने देखा कि चपरासी का काला चेहरा और ज्यादा काला तथा सख्त होता जा रहा है, तने हुए चमड़े की तरह ।

अचानक उसका चेहरा ढीला पड़ गया ।

"इण्टरव्यू हो चुका है साहब, आप वापस जा सकते हैं ।" चपरासी ने उद्घोष किया, जैसे महाभारत में दिन भर का धर्म-युद्ध हो चुका हो और अचानक शाम हो गई हो । नरेन को लगा कि वह अभी चूर-चूर होकर वहीं फर्श पर बिखर जाएगा । खड़े रह पाने की ताकत जवाब दे गई लगी ।

"क्या ?....क्याऽऽ ? इण्टरव्यू हो गया ? कब ?" कहते हुए नरेन भी उसी चपरासी की बगल में बैठ गया । चपरासी ने मुंह बिचकाकर उसे एक बार फिर देखा और, थोड़ा परे सरक गया, मुंह फेर कर ।

नरेन की हँफनी सी छुट गई फिर । रूमाल निकाल कर चेहरे और गरदन का पसीना पोंछा और फिर अपने चेहरे को रूमाल से रगड़ने से उसे कुछ राहत महसूस हुई तो उसने उस पर ध्यान दिया । गर्मी फिर काफी बढ़ गई थी ।

काफी देर तक वह वहां बैठा रहा और अपने को संयत करने

कोशिश करता रहा। आखिर वह इतना नर्वस क्यों हो जाता है ? फुस्स-फुस्स। पहले तो इतना कमजोर कभी नहीं था वह। जरा सी बात को लेकर अब इतना परेशान हो जाता है कि""।

उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। कुछ भी नहीं, सिवाय इसके कि यह भी पहले कई बार भुगती हुई स्थिति है, कोई नई बात नहीं है। पिछले दो साल से ही""

उसके दिमाग में कुछ बिजली की तरह कौंघा और फिर उसके चेहरे की मुरझाहट आँखों की कोरों से नीचे उतर गई।

"क्या लोग अभी अन्दर बैठे हैं ?"

लेकिन उस चपरासी ने जैसे कुछ सुना ही न हो। नरेन ने उसे हाथ से हल्के से छुआ और बड़े आत्मीय शब्दों में फिर से फुसफुसाया। उस व्यक्ति ने उत्तर में नरेन को सिर्फ़ घूरा। कोई जवाब नहीं दिया।

जेब को टटोला नरेन ने। एक रुपया। माधुरी ने रख दिया था, रास्ते में कुछ लेकर खा लेने के लिए। नरेन की उँगलियाँ फौरन जेब के अन्दर घुस गईं। रुपया निकालते वक्त उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह खुद ही अपनी जेब काट रहा हो।

नरेन ने फुर्ती से काम लिया। उस व्यक्ति की मुट्ठी में रुपये ने पहुँचते ही चमत्कार सा किया। तुरन्त ही उसके चेहरे का भाव बदल गया। बड़ी हमदर्दी के स्वर में बोला—"क्या नाम बताया आपने ? मैं अभी जाकर कहे देता हूँ। आगे राम जाने।" और वह चपरासी अन्दर चला गया।

नरेन ने तात्कालिक आश्वस्ति के साथ एक गहरी साँस ली, अपने कपड़ों की ओर देखा और उठकर खड़ा हो गया। कमीज का कालर तथा पैंट की क्रीज अन्दाजे से ठीक की। शायद काम बन ही जाए।

चपरासी बाहर निकल आया था। चुपचाप उसने नरेन को अन्दर जाने का इशारा किया। नरेन जल्दी से दरवाजे तक पहुँचा। एक बार फिर दयनीय दृष्टि अपने कपड़ों पर डाली और एक गर्म साँस ली उसने। अन्दर प्रविष्ट होने के लिए आज्ञा की प्रतीक्षा थी। पाँच आदमी सामने की

मेज पर जमे हुए थे।....

"यस, कम इन।" तोप का एक गोला दगा हो जैसे। नरेन ने सबको अभिवादन किया और उनके कहने के साथ धन्यवाद देता हुआ कुर्सी पर बैठ गया।

"हाँ, तो,....आप एम० ए० फर्स्ट क्लास हैं, सैकन्ड पोजीशन इन द यूनिवर्सिटी ? यें ?" एक महाशय ने उससे इस प्रकार पूछा जैसे उन्हें कुछ शक हो ! होने को तो नरेन जलकर राख हो गया लेकिन चूँकि उसने अब तक तमाम इण्टरव्यू फेस किए थे, इसलिए वह ऐसी सिच्युएशन से निपटना बड़ी अच्छी तरह सीख गया था। कहा कुछ नहीं उसने, सिर्फ फेस एक्स-प्रेशन से ही उनकी बात का समर्थन कर दिया।

पाँचों व्यक्ति एक साथ चौंके। शायद हड़बड़ा भी गए थे। ऐसे विचित्र एप्लीकांट की तो उन्होंने शायद कल्पना भी न की होगी।

नरेन मन ही मन मुस्कुराया। मुस्कुराया ? पंद्रह साल की उम्र से पाला सपना तो पूरा हुआ नहीं और अब शायद पूरा होगा भी नहीं। लगातार चार साल तक पूना फिल्म इंस्टीट्यूट से सिलेबस तथा एडमिशन फार्म मँगाता रहा था वह, सबको पूरा-पूरा भरा भी, लेकिन पोस्ट किसी को नहीं कर पाया। खैर, उसका यह टेलेन्ट ही काम कर जाए तो खुशी होगी उसे। खुशी होगी, बल्कि बहुत खुशी होगी। उतनी ही खुशी होगी जितनी कि इंस्टीच्यूट से निकलकर किसी फिल्म में अपने हीरो साइन होते वक्त उसे होती। हीरो....

लेकिन सामने के चेहरों को देखते ही वह फिर से डर गया। उसे अपना सपना फिर टूटता लगा। किसी टूटे हुए शीशे को सँवार कर यूँ रखे रहता कि फिर से जुड़ जाने का भ्रम हो, उस भ्रम के भी पुनः खण्ड-खण्ड हो जाने की अनुभूति हुई नरेन को। अपना आत्मविश्वास भी ढहता लगा उसे।

"खैर जो है सो है" जैसे नरेन ने कोई अक्षम्य अपराध किया हो एम० ए० में फर्स्ट आकर और उस अपराध को तरह देने के एहसान को नरेन

पर थोपते हुए कहने को मजबूर थे शायद वे सामने वाले सज्जन।

"और कुछ भी है आपके पास ?" यह सवाल पिछले दो साल से तोड़ता चला आ रहा है नरेन को। और वह भी कैसा जिद्दी है कि हर बार इस प्रश्न के बाद उसका भोला जवाब होता है—

"जी, और कुछ ? ...मैं समझा नहीं !"

'देख बेटा नरेन, गौर से देख। उन पाँचों के चेहरे किस रंग से पुत गए हैं ? तू उसे पहिचानता है ?' उसने अपने आप से कहा, इतना तो तू जान ही गया है दो साल में....

"अच्छा, तो आप यह नहीं समझते !"

समझने को कोई बच्चा है नरेन। दिक्कत तो यह है कि वह जरूरत से ज्यादा समझता है। देखा भी नहीं, जाना भी नहीं कि किसने क्या कहा है, उठा और झटपट बाहर आ गया। बाहर वह चपरासी नहीं था। उमस काफी बढ़ गई थी।

जोरों से प्यास लगी उसे, जैसे गर्म-गर्म रेत उड़ेल दी गई हो गले में। लेकिन उसने निश्चय किया कि इस फर्म के कम्पाउण्ड का वह पानी भी नहीं पिएगा।

दौड़कर साइकिल का ताला खोला। हर बार की तरह इस बार भी उसके हाथ काँप रहे थे, जैसे किसी का खून कर देने के लिए वे हाथ बेचैन हों, फड़क रहे हों। उसके मन में आता भी है, इसी वक्त किसी का खून कर दिया जाय, मगर किसका, कोई आकार उसकी पकड़ में नहीं आता।

वह जोर-जोर से चिल्लाकर गाली देना चाहता है, सालो, हरामी के पिल्लो, मैं हूँ ! मैं फर्स्ट क्लास हूँ, फर्स्ट क्लास ! और यह मैं अपने आप हूँ, हेड को मक्खन लगाकर नहीं। मेरी योग्यता....। दिखा दूँगा। नालायको ! मुझसे माँगते हो किसी का....।

वह कुछ नहीं कह पाया, लेकिन उसकी जुबान जैसे तालू से ही चिपक कर रह गई।....

दो साल से वह इन कारनामों में व्यस्त है, बुरी तरह से। अभी माँ

वह ढीला नहीं पड़ा लेकिन, बाद को चाहे शान्त रहे, तुरन्त तो उसके मन में खलबली मच जाती है। दो साल से देख रहा है वह, आज भी। माफ नहीं कर पाता, टाल नहीं पाता, उसे गुस्सा आ ही जाता है। गुस्सा, जो उसकी नियति में नहीं था। क्यों हो जाता है वह ऐसा ? उसके पास उत्तर नहीं है।

पीछे से कैरियर पकड़कर जब किसी ने हिलाया तो उसे होश आया। ओह, साइकिल लिये-लिये ही काफी दूर पैदल निकल आया था वह।

"मैं तेरा वहीं से पीछा कर रहा हूँ।" पीछे मुड़ते ही एक जानी-पहचानी आवाज तमाचा मार गई उसे।

"हलो, अविनाश ! तुम इधर कैसे ?" मुस्कुराहट को जिस खूबी से ओढ़ लेता है नरेन, हरेक के वश का नहीं।

"बेटे, तुम बताओ कि अन्दर कैसे घुसे थे ?" यूनिवर्सिटी छोड़ देने के बाद तरस गया नरेन अपनी ही भाषा के लिए। बहुत सी चीजों के साथ-साथ वह भी कहीं छूट गई है।

'अबे, इधर चला आया तो चला आया। अन्दर भी चला गया तो क्या हो गया यार, देख ना, वैसे का वैसा ही निकल आया हूँ बाहर।' नरेन की इस भाषा में एक जोरदार ठहाका होता था यहाँ आकर। उसने चाहा कि हँसे लेकिन पता नहीं क्या हो गया उसे। लाफिंग गैस सूँघ लेने पर चेहरा जो रोना-सा हो जाता है, अविनाश ने देखा नरेन भी ठीक उसी तरह हँस रहा है। ठक-ठक। सूखा-सूखा सा सब कुछ।

"मजाक मत कर यार", अविनाश गंभीर हो गया था, "सच बोल, फिर इण्टरव्यू का ही चक्कर था न ?"

"था तो, मगर मजाक कौन कर रहा है बे ?" क्यों हो उठा गरम अविनाश पर नरेन, दोनों के लिए पहेली। इस पल दोनों एक दूसरे को देख रहे थे, सिर्फ देख रहे थे। जैसे दोनों के बोल खो गए हों और उनकी बाकी दूसरी मुद्राएँ भी चुरा ली गई हों।

थोड़ी देर खड़े रहने के बाद दोनों ने अपने-अपने सरों को लगभग एक-

साथ झटका दिया।

"मजाक!" अविनाश बोला।

"मजाक!!" नरेन हँसा।

अल्फ्रेड पार्क के नजदीक आते-आते उसकी साइकिल फिर लड़खड़ा गई। उसाँसें लेता मन खुद ही इतना बोझिल था कि साइकिल सँभालने का उसे होश ही नहीं रहा। वह गिर पड़ा था।

इस बात पर उसने पहले भी कई बार सोचा था। लोग साइकिल से गिरने पर तुरन्त उठ खड़े होते हैं चाहे वे कितने ही भूखे हों, दुर्बल हों या बीमार हों। और उसने पाया कि अभी उसकी फुर्ती भी पूरी तरह से चुक नहीं गई है। ऐसे मौकों पर वह अपने आप पर कतई आश्चर्य नहीं करता।

प्यास अब उसे फिर से सता रही थी। बीच में थोड़ी देर को, लगा था यह दब गई है, लेकिन वह अब फिर से उठ खड़ी हुई थी। दूने जोशो-खरोश से।

तभी उसे ध्यान आया कि पूरा दिन गुजर चुका है और सूरज का जोर खत्म हो गया है। लाइब्रेरी जरूर अब तक बन्द हो गई होगी, उसने सोचा, लेकिन वहाँ एक नल है और वह वहाँ कम से कम पानी तो जी भर कर पी सकता है, बिना किसी के टोके हुए।

साइकिल की टोह ली, गनीमत है कि अभी कोई डिफैक्ट नहीं आया है, वरना पता नहीं''''दूसरे की साइकिल!

वह म्यूजियम की बगल से लाइब्रेरी की ओर रुख करके पार्क में घुसा। उसकी आँखों में इस वक्त तृष्णा थी सिर्फ़। वितृष्णा सी।

हठात् उसकी निगाह दायीं ओर के लान पर चली गई। सूना लान और उसके बीचों-बीच चार सीढ़ी ऊँचा छोटा सा चबूतरा। चौकोर। उसकी निगाहें धीरे-धीरे ऊपर उठ रही थीं। पत्थर का एक स्टैण्ड जिस पर घास और काई जमी हुई थी।

और जब पत्थर के अन्तिम सिरे पर निगाह पहुँची तो वह चौंक गया। अब तक यह ऐसा का ऐसा ही है। किसी मूर्ति की स्थापना अभी तक उस पर नहीं हो सकी? पिछले दो साल से····

साइकिल रास्ते से भटक गई थी। लान के चारों ओर तने काँटेदार तारों के बीच अगला पहिया घुस गया था, किसी ढीठ बालक की तरह।

वह फिर नर्वस हो गया। हाँफने से शुरू करके वह पब्लिक लाइब्रेरी की ओर दौड़ पड़ा।

साइकिल पटक कर वह नल से जा लिपटा और टोंटी से मुंह अड़ा दिया।

"अब वे दिन चले गए मित्र, जब मेरे द्वारे एक गाय और एक भैंस बँधी रहती थी, और तुम हँसोगे यार, बचपन में मैं अपनी गाय का बछड़ा हुआ करता था, उसके अपने बछड़े से भी ज्यादा।" पता नहीं नरेन ने कितनी बार यह बात यूनिवर्सिटी कैफ्टेरिया में दोस्तों के साथ चाय और काफी लेते हुए दुहराई है, "मैंने बचपन में, जहाँ तक मुझे याद है कभी गिलास में दूध नहीं पिया; बस सीधे गए और जुट गए····।" यह कहते-कहते, सुन-हँस रहे लोगों की हँसी में वह भी शामिल हो जाता था। जोर से हँसते हुए।

लेकिन नल छोड़ने के बाद उसे मुस्कुराहट नहीं सूझी। थकान के बाद कोई राहत नहीं मिली थी। पानी था, जाकर पेट में लगा और सीधा दिमाग में चढ़ गया। लगा उसका दिमाग गीला हो गया है। उसे ठसा लग गया था और पानी उसकी आँखों तथा नाक में उतर आया था। परेशानी के कारण वह वहीं जमीन पर बैठ गया।

५

अशोक और सुमन आज दिन भर में एक बार भी नहीं लड़े। शतरंज के मोहरे भी टीन के डिब्बे में कैद कोई शोक सभा सी कर रहे थे। वे दोनों शतरंज के मरीज थे और यह किसी के लिए भी आश्चर्य की ही बात होती कि सुबह चाय पीने के बाद भी कोई चकल्लस नहीं, और दोपहर में भी बाहर फड़ नहीं जमा।

उन दोनों को एक दूसरी ही बीमारी ने दबोच लिया था। माधुरी को ये पहले भी कई बार देख चुके थे। कभी कुछ नहीं हुआ था। लेकिन आज देखकर लगा कि कुछ हुआ है। उनके दिमाग में क्या हो गया था, वे खुद नहीं जानते थे। दिन भर दोनों अलग-अलग सोचते रहे पर उनकी समझ में आया कुछ नहीं।

जैसे दोनों की ही जिन्दगी बदल गई हो, दिन भर दोनों बहुत गंभीर रहे। उदास से। कभी-कभी एक दूसरे को देख लेते। देखकर खीझ आती थी उन्हें। चुप से और चुप्पी की वजह से उन्हें गुस्सा भी आ रहा था।

यह उनकी जिन्दगी का पहला दिन था कि वे एक दूसरे के पास से उठ भी गए। बिना बोले। चुपचाप। और दूसरे ने उसे जाने से रोका नहीं, न ही जाकर खबर ली कि कोई कहां चला गया है।

दिन भर वे इधर से उधर टहलते रहे, बेचैन से। दरअसल उन्हें अपनी परेशानी की वजह समझ में नहीं आ रही थी।

शाम को अशोक की मां ने देखा कि दोनों लड़के छत पर बैठे हैं। चारपाई पर एक दूसरे से पीठ सटाए, मुंह पर हाथ रखे। उन्होंने सोचा शायद दोनों में फिर झगड़ा हो गया है और वे फिर एक दूसरे से बहुत नाराज हो गए हैं। आंगन में खड़े-खड़े ही उन्हें आवाज दी।

अपना नाम पुकारा जाता सुनकर दोनों चौंके। फिर पलटकर देखा, आंगन में मां खड़ी थीं।

अशोक ने सुमन को कोहनी मारी और जल्दी से नसैनी पकड़कर नीचे उतरने लगा। अनमना सा बैठा सुमन भी उठा और आहिस्ता-आहिस्ता अशोक के पीछे-पीछे नीचे उतर गया।

दोनों के उतरे हुए चेहरे देखकर अशोक की मां को कुछ चिन्ता हुई।

"क्यों रे लड़को, तुम दोनों की तबियत तो ठीक है न?" कहते हुए उन्होंने सुमन और अशोक के माथे और बालों पर धीरे-धीरे से हाथ रखा। फिर दोनों के हाथ पकड़े, सब कुछ सामान्य था।

"कुछ नहीं मां, हम लोग बिल्कुल ठीक हैं। क्या हुआ है हमें?" अशोक ने मां को देखा और फिर सुमन की ओर देखा।

फिर वह खिलखिला पड़ा। सुमन भी हंसा।

"लो, तुम दोनों ने तो मुझे हैरान ही कर दिया।" अशोक की मां उन्हें हंसता देखकर आश्वस्त हुई। फिर, "अरे शाम हो गई, आज तुम लोग बगीचे में नहीं गए? आज अखाड़ा नहीं होगा क्या?"

अशोक और सुमन ने एक दूसरे को फिर देखा। फिर वे धीरे-धीरे दरवाजे से बाहर हो गए। बाएँ ओर की गली से मुड़कर वे घर के पिछ-वाड़े पहुँच गए और वहाँ से सीधे बगीचे की ओर हो लिए। यह बगीचा अशोक के बाबा ने पाला था, अपना जी जान लगाकर। वे इस बगीचे को प्यार भी बहुत करते थे, उतना ही जितना कि अन्हें से पोते अशोक को। अशोक को अब अपने बाबा की शक्ल तो याद नहीं लेकिन वह बगीचे में बनी बाबा की समाधि पर रोजाना माथा जरूर टेकता है, श्रद्धा से। गर्मी की छुट्टियों में जब सुमन भी यहीं आ जाता है तो मजे से कटती है इसी बगीचे में। दोनों ने व्यायाम के निमित्त एक अखाड़ा भी खोद रखा है, बाबा की समाधि के बगल में।

समाधि पर पहुँच कर दोनों रुक गए। अशोक ने अपना सर झुकाया और सुमन ने हाथ जोड़े। लेकिन दोनों की मुद्राएँ रोज से कुछ भिन्न थीं और वे अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही देर तक खड़े रहे।

इसके बाद अशोक ने अपने कपड़े उतारे और अखाड़े में कूद पड़ा। उसने सुमन को भी पुकारा लेकिन सुमन ने सर हिला कर मना कर दिया। अशोक थोड़ी देर के लिए चौंका, "क्यों ?"

"ऐसे ही, मन नहो है आज। तुम्हीं करो।"

अशोक कुछ देर संदिग्ध निगाहों से सुमन को घूरता रहा। फिर अपने काम में जुट गया, "ठीक है।"

सुमन काफी देर तक वहीं बैठा-बैठा सोचता रहा फिर यकायक वह उठ खड़ा हुआ। उसे लगा कि उसका सर काफी भारी हो गया है और दर्द की लहरें उसके पूरे शरीर में झनझना रही हैं।

तेज-तेज कदमों से चलकर वह बाग के किनारे तक आ गया। सामने ही पेड़ों का झुरमुट था और उस पार की कोई चीज इधर नजर नहीं आ रही थी। उसने चारों ओर देखा, शाम का धुंधलका उतर आया था। इधर या भी नहीं कोई।

उसने जल्दी से अपना दायाँ हाथ अण्डरवियर के अन्दर डाल लिया।

६

सामने सरिता आ खड़ी होगी, यह उसे पता नहीं था, वरना हो सकता था नरेन इधर न आता। यह सब भी अकस्मात् ही हुआ था। नरेन वैसे भी इधर कभी नहीं आता पिछले दो साल से....।

वह तो, अल्फ्रेड पार्क में घुस ही आया था और शाम भी हो गई थी। घर जाने की तबियत बिल्कुल नहीं थी और कोई दूसरी जगह भी उसके दिमाग में चढ़ नहीं रही थी, जहाँ बैठकर वह थोड़ा बहुत हल्का हो लेता। असल में तो वह बैठना भर चाहता था। कहीं भी, किसी भी एकान्त स्थल में। और इसीलिए वह इधर चला आया था, तोपों के मुहाने के सामने से होकर, इधर, जहाँ संगमरमर का....

उसने कभी भी यह नहीं सोचा था कि सरिता जब भी कम्पनी बाग

घूमने आती होगी तो अब भी वह इधर आती होगी। पहले वे दोनों····

शाक तो लगा था नरेन को और चाहा भी था उसने कि वह सरिता को न पहिचाने, देखकर भी अदेखा कर दे। लेकिन शायद उसी वक्त सरिता ने भी उसे देख लिया था और नरेन के इस हाल में होने के बावजूद भी शायद उसे उसने पहिचान भी लिया था।

उसने महसूस किया था कि सरिता को देखकर आज भी वह कुछ बदल गया है, हमेशा की तरह। तभी सरिता ने दूसरी ओर को मुंह किए पास खड़े व्यक्ति की ओर उन्मुख होकर कुछ कहा और नरेन को होश ने झटक दिया। उसका चेहरा तमतमा आया।

साइकिल को पास ही में खड़ा कर, कुछ दूरी पर सरिता की ओर पीठ करके घास पर धप से बैठ गया नरेन। उसके मन में सरिता के प्रति घोर वितृष्णा और जहरीली नफरत आग पैदा कर रही थी। उसे लगा कि वह इस आग से मुकाबिला नहीं कर पाएगा, उसे दबा न पाएगा। और यह आग दबी नहीं तो····

लेकिन उसके प्रयत्न बेकार जा रहे थे और वह बेतरह छटपटा रहा था। जब भी कभी सरिता की याद आ जाती है, ऐसा ही कुछ हमेशा उसके साथ होने लगता है। यह वह अच्छी तरह से जानता है और इसीलिए वह बेकार होते हुए भी तमाम ऊटपटांग कामों में अपने आपको व्यस्त रखता है, भूले से भी कभी सरिता का स्मरण नहीं करता। कभी-कभी जब सरिता की याद उसके मन में सोने से पहले तक फिर जाती है तो वह उसे बलपूर्वक दबा जाता है, इतना शक्तिशाली है वह। लेकिन जब सरिता खुद ही सामने पड़ जाए तो उसके लिए कुछ भी कर पाना नामुमकिन हो जाता है। वह बहुत कमजोर हो जाता है, बहुत कमजोर। दो साल पहले····

होगी सरिता ही। उसके पीछे, इतनी सधी चाल सरिता की ही हो सकती है। हो सकता है वह उसी के पास तक आ रही हो, लेकिन नरेन ने पीछे मुड़कर देखा नहीं। सरिता के कदमों की ओर पास आती तेज-तेज थाप उसके दिल के करीब से गुजर रही थी। नरेन ने अपने आपको फिर

से कमजोर होते हुए महसूस किया ।

लेकिन वह कभी कमजोर नहीं होगा। अब वह सरिता को लेकर कभी कुछ महसूस नहीं करेगा । आज वह सरिता से साफ़-साफ़ कह देगा । हमेशा के लिए वह अब सब झंझट खत्म कर देगा । हार ही सही, लेकिन दो साल से चल रहे इस संघर्ष से मुक्ति पा जाएगा वह । नरेन ने अपने समूचे आत्म-विश्वास को इकट्ठा करने की कोशिश की ।

लेकिन····लेकिन····

सरिता ठीक उसके पीछे खड़ी हो गई थी । पता नहीं उसके चेहरे पर क्या भाव थे लेकिन वह चुप थी, पिछली कई बार की तरह । शानदार चुप्पी की धनी है सरिता ।

यह चुप्पी ही नरेन के आत्मविश्वास को खा गई । हमेशा की तरह । उसकी आत्मदृढ़ता थोड़ी ही देर में पिघल गई ।

"कैसे हो ?" शायद अब तक सरिता संभल गई थी, पीछे खड़े-खड़े ही । नरेन ने पीछे मुड़कर नहीं देखा था, हो सकता है सरिता को यह बहुत ज्यादा खल गया हो । जिद्दी तो वह भी कम नहीं है न । अगर सरिता कुछ कम जिद्दी ही होती तो क्या नरेन को आज यह दिन देखना पड़ता । दो साल पहले····

खैर, जब सरिता संयत होकर उसके पीछे खड़े-खड़े इतनी देर के बाद, बजाय लौट जाने के अगर उससे बोल सकती है तो नरेन भी निरा गँवार नहीं । वह अब तेजी से पीछे पलट गया था । चाहता था कि कोई तीखा सा जवाब सरिता को थमा दे ताकि वह वहाँ से चली जाए । चली जाए और फिर कभी भी न आए । कम से कम चैन से 'बैठ' तो सकेगा वह ।

आँखें मिल गई थीं । काफी देर तक वे यूँ ही बने रहे । काफी ठन्डी थीं इस बार उनकी निगाहें । नरेन को याद आया कि क्लास में निगाहों की जो जबरदस्त मुठभेड़ हुई थी, निश्चित ही काफी गर्म थी । सोचते ही उसकी आँखों का भाव भीग गया । शायद सरिता को भी वह दिन याद

आ गया था। आँखों का रंग बदल गया। नजरें भी नरेन की आँखों पर से हटाकर माथे के बीचों-बीच नाक की जड़ पर जमा दीं उसने। बड़ी कुशलता से अपने आपको सँभालती हुई फिर से चहकी, "कैसे हो?"

नरेन को उसका चहकना कुछ खास बुरा नहीं लगा इस बार। लेकिन बोला फिर भी कुछ नहीं। उसे हिप्नोटिज्म नहीं आती लेकिन तब भी वह सरिता के चेहरे को ही देख रहा था, निर्विकार सा। उसे लग रहा था कि ऐसी हालत में वह इससे ज्यादा कुछ कर भी नहीं पाएगा।

कोई कहाँ तक बोर नहीं होगा? बड़ा सा चेहरा सरिता का, और खीझ की छोटी-छोटी लकीरें, छिप तो सकती नहीं।

और नरेन फिर पगला गया।

"हाँ, हाँ! हाँ, हाँ!!" मुँह से बोल फूटा तो। लेकिन उसके इस अजीब पागलपन से सरिता को हैरानी जरूर हुई।

"नरेन!" सरिता बिल्कुल सामान्य थी। कोई और लड़की इस जगह चौंक सकती थी।

"आप हिन्दी में गोल्ड मेडलिस्ट हैं तो आपसे यह उम्मीद तो थी कि आप मेरे नाम का उच्चारण बिल्कुल सही करेंगी। आपने बिल्कुल दुरुस्त फरमाया, नरेन!" पता नहीं नरेन यह सब कैसे बोल गया, लेकिन उसके पास बोलने के लिए तत्काल कुछ था भी नहीं। सरिता के बारे में सोच-सोच कर अपने अन्तर की पीर बढ़ाने से अपने आपको हमेशा रोकता रहा था। और अब अगर उसके पास सरिता से बात करने के लिए फिनिश्ड प्रॉडक्ट की तरह तैयार बातों का सिलसिला नहीं था तो उसे यह अभाव खटकना स्वाभाविक भी था। ऐसे में वह कुछ भी बोलता, लापरवाही से, सरिता उससे हैरान हो, चौंके या न चौंके, कुछ ज्यादा महत्व दे उसे या न दे, समझे या न समझे, नरेन को इससे क्या फर्क पड़ना था? जो कुछ भी होना था सो तो हो ही गया। इससे ज्यादा और कुछ हो भी नहीं सकता। और अगर और कुछ होने की गुंजाइश हो भी तो वहाँ नरेन अपनी दिमागी विकृति के अलावा और पा ही क्या सकता है। जितना है,

उससे ज्यादा सहिष्णु वह उस हालत ही में हो सकता है।

नरेन को अपने अन्दर कुछ कुलबुलाता और कुछ उमड़ता-घुमड़ता लगा। लगा कि सिर भन्नाकर किरचों में बिखर जाना चाहता है, सरिता के चारों ओर। उसे मस्तिष्क में कुछ तनाव महसूस हुआ, लगा कि अब उसके सोचने की प्रक्रिया यकायक शिथिल हो गई है। तत्काल ही कोई निर्णय न ले पाने की हद से ज्यादा शिथिल।

यंत्रवत् उसका दायाँ हाथ पतलून की जेब के अन्दर चला गया। जैसे 'तंद्रा की हालत में' उसने एक सिगरेट निकाली और होंठों में भींच ली। फक् से दियासलाई की तीली जली और सरिता को महसूस हुआ जैसे नरेन ने तीली की लौ उसकी तर्जनी से छुआ दी हो। दो साल पहले तक यह उँगली इसी कम्पनी बाग में कभी-कभी नरेन के होंठों के बीच होती थी। लेकिन इस बार नरेन के मुँह में विल्स फ्लैक थी और तीली की लौ उसे सुलगा रही थी।

सरिता को लगा कि एक लौ उसकी उँगली के सहारे उसके भीतर अभी-अभी उतर गई है और उसका मन धीरे-धीरे सुलगना शुरू हो गया है।

जैसे वह फ्रेम में जड़ी कोई पेन्टिंग हो। मार्डन पेंटिंग। कैनवास पर चिपके हुए रंगों का बेतरतीब कम्पोजीशन। जिसका कुछ मतलब पेन्टर की समझ में होता हो तो होता हो, खुद पेन्टिंग की समझ में कुछ नहीं।

सरिता खड़ी-खड़ी सिर्फ देखती रही। मन में आया भी कि नरेन की सिगरेट छीन कर फेंक दे लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी। चीखकर कहना चाहती थी, लेकिन होले से भी मना न कर सकी। बस एक अजीब सी हालत में वहाँ खड़ी रही। अजीब सी हालत में।

पहला कश ही बड़ी बेताबी से लंबा खींच दिया नरेन ने। और तब उसे लगा कि अब उसे कुछ राहत है और उम्मीद है कि वह तत्काल ही ढेर नहीं हो जाएगा; कुछ पल और जी सकेगा, किसी भी स्थिति का सामना करते हुए।

नरेन ने सिगरेट की राख झाड़ी तो सरिता को लगा जैसे वह स्वयं अस्तित्वहीन होकर नरेन की बगल में गिर पड़ी है; सिगरेट की राख का नन्हा सा टीला होकर।

उससे न रहा गया तब।

"नरेन !" जैसे यह नाम बहुत ज्यादा लंबा हो गया हो और इस नाम को लेने भर में सरिता की सम्पूर्ण ऊर्जा चुक गई हो। चेहरा थोड़ा खिंच गया, और गले की नसें नीली पड़ गईं।

"यह सिगरेट''''तुम कर क्या रहे हो ?"

नरेन इस बार मुस्कुरा दिया। "हुँह, विशुद्ध हिन्दी में, धूम्रपान।" नरेन ने शायद चिढ़ाने के लिए ही कहा हो, सरिता थोड़ा और चिढ़ गई। उसे लग रहा था जैसे कोई चीज उसके गले में अन्दर से फँसती जा रही है और उसका स्वर उसके अन्दर ही कैद हुआ जा रहा है। बोलना चाहती है लेकिन मुंह से आवाज निकालने में उसे काफी तकलीफ महसूस हो रही है।

"यह तुम पुरुषों की चीज है,''''लेकिन जानते हो कितनी खतरनाक है ?"

"और कितनी जहरीली है और कितनी आग लगाती है, वगैरह-वगैरह। यही कहना चाह रही हो न ?" नरेन ने सरिता को व्यंग्यपूर्ण कुटिल दृष्टि से ताका, जैसे कभी-कभी कोई नौकर अपने मालिक की कोई खास गलती सप्रमाण पकड़ ले, दृष्टि की कठोरता और निरीहता दोनों आमने-सामने थीं।

"जो आग तुमने दी है वह क्या कम खतरनाक है सरिता ? शायद उससे ज्यादा खतरनाक कुछ भी नहीं होगा मेरे लिए। मेरा पूरा व्यक्तित्व उसी आग में जला जा रहा है। बड़े-बड़े फफोले पड़ गए हैं सरिता उस पर, लेकिन उस आग की तपिश अभी भी कम नहीं हुई है। यह आग अगर कम न होगी तो सरिता मुझे भी मालूम नहीं मेरा क्या होगा। अन्दर आग है, यह धुआँ भी अन्दर जा रहा है। थोड़ी देर को कुछ फर्क पड़ जाता है,

मैं अपने आप से बच जाता हूँ और फिर से मरने के लिए जिन्दा रह जाता हूँ।"....दो साल के बाद आज पहली बार नरेन का मुंह खुला था और यह उसकी पुरानी आदत है, जब उसका मुंह खुल जाता है तो वह शराबियों की तरह बड़ा लंबा-लंबा बोले ही चला जाता है, बिना बहके हुए और उसे कोई टोक भी नहीं पाता। सरिता ने पहले भी कई बार कोशिश की थी, ऐसे मौकों पर वह नरेन का मुंह पकड़ सके लेकिन हर बार उसे निराश होना पड़ा था। उसका लंबा-लंबा बोलते चला जाना, भावुकों की तरह और बाद में यह कह देना कि मैं भावुक नहीं हूँ, सरिता को कभी भी अच्छा नहीं लगा था। दो साल पहले के बाद से तो हालात और टर्म्स दोनों के काफी बदल गए हैं, फिर भी सरिता ने इतना सब ही बर्दाश्त कर लिया, सरिता ही को आश्चर्य हुआ। लेकिन जैसे ही उसे ज्यादा लगने लगा वह शिष्टाचार भुला बैठी; नरेन को रुकना पड़ा।

सरिता की तेज आवाज सुनकर दूर खड़ा उसका साथी चौंक पड़ा। घबड़ाता हुआ दौड़ा चला आया।

"क्या हुआ, सरिता, क्या हुआ ?"

लेकिन सरिता अभी भी तनी हुई खड़ी थी, गुस्से से फुफकारती हुई। नरेन को लग रहा था जैसे सरिता ने एक दंश और मार दिया हो उसे। चुपचाप मुंह लटकाकर बैठा था वह, बैठा रहा।

जब सरिता को खुद ही होश आया तो वह संयत हो गई, बल्कि कुछ विनम्र भी हो गई। हंसी भी।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं। ये मेरे पुराने मित्र हैं, मि० नरेन। छोटी-छोटी झड़प हो जाना न इनके लिए कोई खास मतलब रखता है और न मेरे लिए।....और हां नरेन। ये हैं प्रो० मित्तल। तुम्हारे जमाने में नहीं थे। तुम जानते ही हो मुझे तो लैक्चरर होना नहीं था, बाइ द वे, ये साहब कलकत्ता यूनिवर्सिटी टाप करके आए थे उन्हीं दिनों, पापा ने मेरी जगह इन्हें दे दी।"

नरेन को उठते हुए लगा जैसे वह सर से लेकर पैर तक बीच में

जगह से टूट गया है। चटख गया है। लेकिन वह उठा। उठा और अपना मायूस हाथ प्रो० मित्तल की ओर बढ़ा दिया। जब्त किया और जोर से जब्त किया अपने को। तब कहीं जाकर उसके मुंह से ये शब्द कांपते हुए निकले। "कांग्रेचूलेशन प्रो० मित्तल।"""और हां सरिता। पापा ने इन्हें, तुम्हारी नहीं मेरी जगह दी होगी। तुम्हें भी कांग्रेचुलेशन।"

नरेन को लगा आज कांग्रेचुलेशन देने के बाद कोई एक बोझ उसके दिमाग पर से खिसक कर दिल पर जम गया है। पता नहीं, उसे फिर क्या जुनून सा चढ़ आया और पता नहीं इतनी द्रोही शक्ति उसके अन्दर कहां से आ गई कि वह अपनी साइकिल उठाकर फौरन भाग निकला वहां से, जैसे कोई जंगली भैंसा रेद रहा हो उसे।

सरिता और मित्तल दोनों उसे देखते रहे, पागलों की तरह का जो था उसका व्यवहार। सरिता ने उसे जोर की आवाज लगा दी। जैसे कोई भूली बात पुनः याद आ गई हो; नरेन रुक गया था।

सरिता उसके पास पहुंच गई।

नरेन की यह मुद्रा देख सरिता विचित्र तरीके से चौंक पड़ी।

उदासी का इतना वृहत् साम्राज्य उसने एक नजर में कभी नहीं देखा था। थोड़ी देर वह कांपती खड़ी रही और उसके बाद उसके मुंह से जो शब्द निकले, वे नरेन की समझ में नहीं आए, "देवदास मत बनो नरेन!"

सरिता लौट गई थी।

७

"अबे ओ देवदास की औलाद ! अब उठेगा भी या नहीं ?" सुभाष ने रज्जन के कंधे पर आहिस्ता से अपना हाथ रख दिया, "कुछ कल के लिए भी छोड़ । सब आज ही पी जाएगा क्या ?" बड़े प्यार से उसने रज्जन के हाथ में थमा हुआ गिलास अपने हाथ में ले लिया ।

"एक तो बेटा तुम नए हो । अन्धाधुन्ध नहीं झेल पाओगे ।" कहकर सुभाष ने हाथ में पकड़ा गिलास खाली कर दिया । खाली गिलास रज्जन के सामने लुढ़का दिया और खुद भी उसकी बगल में बैठ गया ।

रज्जन उस लुढ़कते गिलास को देखता रहा, स्थिर निगाह से ।

"रज्जन बेटा,...." सुभाष कुछ कहना चाहता था लेकिन तभी रज्जन उसकी ओर घूम गया । उसकी आँखों से छलकती उदासी देख वह रुक

गया। बड़ा निरीह होकर रज्जन उसे देख रहा था, मानो जिन्दगी में उसे पहली बार देख रहा हो। या फिर वह इतना बीमार हो कि सामने वाले चेहरे को पहिचान पाना मुश्किल हो गया हो उसके लिए।

सुभाष चुप हो गया और नीचे जमीन की ओर देखने लगा। रज्जन ने भी अपनी गरदन फिर लटका ली।

काफी देर बाद सुभाष ने अपना चेहरा ऊपर उठाया, "रज्जन, एक बात कहूँ?" रज्जन ने भी अपना चेहरा ऊपर उठा लिया। असहाय सूनेपन को समेटे वह बैठा रहा वहीं, कुछ भी नहीं बोला। सुभाष के तईं उसमें कोई उछाह नहीं था।

"मैं नहीं जानता था रे, कि यार तू भी इस छोटी सी बात पर मयखाने में बसेरा ले लेगा। अरे भई, किसके घर में खटपट नहीं होती? आज हम सब की हालत ही ऐसी हो गई है कि हम अपनी बीवियों तक से बिना लड़े नहीं रह सकते। बल्कि जब हम किसी और से नहीं लड़ पाते तो घर जाकर घरवाली से जरूर लड़ते हैं। इस जिन्दगी में सिवा लड़ाई के कुछ और भी रक्खा है क्या? कौन साला चैन से मरता है आजकल? हर जगह चिल्ल-पौं चिल्ल-पौं है। घर में, बाहर। सबके बाहर और सब के भीतर। वह क्षण बड़ा क्रान्तिकारी रहा होगा मित्र, जिस दिन हम सब की नियति ही कुछ और हो गई और हम सब लोगों को किसी ने आग में तड़पने को झोंक दिया। हम सब इस आग में किलबिला सकते हैं सिर्फ, जलकर मरने का सौभाग्य भी नहीं है हमारा। ये सब सुविधाएँ उन लोगों को मिली हैं जिन्हें मरना नहीं आता और जीने का भी अधिकार नहीं है जिन्हें। वे ही हमसे अलग हैं। हमें तो कहीं मुक्ति नहीं है, लेकिन मुक्ति के लिए हमें संघर्ष करना ही पड़ेगा, जानते हुए भी कुछ हासिल नहीं होगा हमें। संघर्ष। संघर्ष, जब तक हमारा पुरुषार्थ भी मर नहीं जाता।'''"

"बस करो सुभाष! तुम्हें पता है मुझे उपदेश और भाषण दोनों से ही सख्त चिढ़ है। तुम तो हो शुरू से ही कमअक्ल, मेरी परेशानी तुम्हारी समझ में नहीं आएगी।" कहकर रज्जन ने अपना सिर झुका लिया। जैसे

कोई बड़ी पीड़ा दुहरी हो गई हो।

सुभाष को चढ़ गई थी लेकिन इतनी नहीं कि कुछ भी फील न करे। रज्जन का ऐसा बोलना उसे इस वक्त काफी बुरा लगा हालाँकि कोई नई बात नहीं थी। जब वे दोनों ए० डी० एस० में साथ ही साथ थे तब भी रज्जन यूँ ही सुभाष को झिड़क देता था।

सुभाष ने एक खाली घूंट अन्दर गटका और फिर जमीन पर लोटते खाली गिलास को उठाकर अन्दर चला गया।

लौटा, तब भी रज्जन उसी तरह बैठा था और सुभाष के हाथ का गिलास भरा हुआ था, लबालब।

"हद हो गई यार, अभी तक वैसे ही बैठा है ? अच्छा ले भई, तू पी। ले।" और सुभाष ने वह गिलास रज्जन के आगे कर दिया।

रज्जन ने सिर उठाकर सुभाष को देखा। फिर अपनी आँखों के सामने का भरा हुआ गिलास देखा लेकिन निश्चेष्ट बैठा रहा। "लो यार, पियो। इस मयखाने में आकर कोई इनकार नहीं करता, जिसे एतराज होता है वह यहाँ तक कभी नहीं आ पाता।"

"जिसे एतराज होता है, वह यहाँ तक कभी नहीं आ पाता।" वाकई। जब तक उसे एतराज था इस कमीनी चीज से, वह कभी इधर आ पाया ? लेकिन जब उसने कमीनेपन के कई और वीभत्स रूप देखे तो यह चीज बुरी नहीं रही और वह यहाँ आ गया। रज्जन ने सोचा और फिर उसने भरे हुए गिलास को सुभाष के हाथों में से झपट लिया, तेजी से। कुछ शराब बाहर छलक कर गिर गई थी, मिट्टी में, और मिट्टी के रंग में जज़्ब हो गई थी। देखकर सुभाष हल्के-हल्के मुस्कुरा दिया।

एक साँस में ही रज्जन ने गिलास खाली कर दिया और तब सुभाष उसके पास बैठ गया।

"इतना दुःख नहीं करते रज्जन। कोई खास बड़ी बात नहीं है, वह जरूर लौट आएगी।"

"सुभाष !" रज्जन जोर से चीखा लेकिन फिर वह रुक गया।

कि आगे कुछ भी कहने के लिए उसे अपनी पूरी शक्ति टटोलनी पड़ेगी।

"वह कभी नहीं आएगी सुभाष। अब वह कभी नहीं लौटेगी।"

"नहीं रज्जन, अभी तुम्हें आदमी की मुसीबतों का पता नहीं है। उसका इस दुनियाँ में तुम्हारे सिवा और है ही कौन? वह जरूर लौटकर आएगी। तुम्हारे ही पास आएगी। और तब…"

"नहीं सुभाष नहीं, अब वह नहीं आएगी। नहीं आएगी। और अगर आ गई तो…तो…तब मैं उसका गला दबा दूँगा।" रज्जन का मुँह पसीने से भर गया था और उसकी साँस भी बहुत तेज-तेज चल रही थी।

"अरे यार, थूको गुस्सा। लानत भेजो सुसरी पर। न आए। अं…खत्म हो गई? अच्छा रुको, और ले आता हूँ।" कहकर सुभाष उठने लगा तो रज्जन ने उसे पकड़ कर बिठा लिया।

"नहीं सुभाष! तू यहीं बैठ। बहुत हो गया। और फिर…मेरे पास… और पैसे भी नहीं हैं।" रज्जन ने अपनी जेब टटोली। सुभाष ने उसे झिटक दिया।

"वा यार! पहले ही दिन पैसों की फिक्र करने लगा? अमाँ यार, यहाँ कोई फिक्र नहीं चलती। आज तू मेरी ओर से पिएगा। एक गिलास और…और पिएगा।" और वह जबरदस्ती वहाँ से उठ गया।

रज्जन वहीं बैठा रहा। सुस्ती को ताम-झाम लपेटे।

८

घर में घुसते ही उसे टहोका मिला ।

"मुन्ना है क्या ?" चारपाई पर पड़े हुए उसके वृद्ध पिता ही थे जो अब कुछ भी नहीं देख पाते, पिछले दो साल से । नरेन पल भर को ठिठक गया । आज घर वह जल्दी लौट आया था । अब बाहर भी वक्त गुजारने से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं । सोचा, पिताजी के पास रुके बिना ही सीढ़ियाँ चढ़ जाए । होगा भी क्या, वही पुराने सवाल । और वही खीझ भरे जवाब ।

लेकिन कुछ सोचकर वह वहीं रुका रहा ।

"हाँ, पिताजी", वह बुदबुदाया ।

"बड़ी देर में बोला तू, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं पिताजी, क्या बोलूं ?"

"बोलोगे क्या, कोई खास बात तो हुई नहीं। फिर लौटे हो, कोरे। रोज की तरह। मेरी समझ में नहीं आता कि दुनियाँ में तुम्हारे लायक कोई नौकरी नहीं है, या तुम ही किसी नौकरी के लायक नहीं हो?...."

उसने पिता को बीच में ही टोक दिया।

"दोनों में से एक भी बात नहीं है पिता जी। मन रखने के लिए आप जो चाहें समझ लीजिए। मैं सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे अभी तक नौकरी नहीं मिली।" कहते-कहते वह दाँत पीसने लगा, "नौकरी सड़क पर तो पड़ी है नहीं....।" वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा था और अपने अन्धे बाप की पीछा करती आवाज को उसने जीने से नीचे धकेल दिया था।

छत पर पहुँच कर उसने अपना कमरा खोला और धड़ से अन्दर घुस गया। उसे लगा कि हर जगह से ज्यादा सुरक्षित एक यही ठाँव है। उसका यह कमरा उसकी हर मुद्रा का सहभागी है।

शाम का धुँधलका छा गया था। टटोल कर चारपाई ढूंढी नरेन ने और बिना बत्ती जलाए वह चुपचाप बैठ गया। एक गहरी लम्बी साँस ली। तभी उसने जीने पर किसी के चढ़कर आने की आवाज सुनी। अब उठकर उसने बत्ती जला दी। डरने से क्या फायदा? वह अच्छी तरह देख चुका है कि अँधेरा प्रश्नों की बौछार की तीव्रता को कम नहीं करता बल्कि उसे और पैना कर देता है और वे सब के सब प्रश्न अन्दर तक समूचे धँस जाते हैं। अँधेरा ज्यादा विकल कर देता है।

वह दरवाजे की ही ओर देख रहा था। माँ थीं।

वे अन्दर आ गई थीं। नरेन उन्हें इत्मीनान से चारपाई पर बैठते देखता रहा। काश उसने हमेशा माँ को इत्मीनान ही से चारपाई पर बैठे हुए देखा होता। खैर।

माँ बैठ गई। आश्वस्त हो गईं।

"बेटा, तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें कुछ कह तो नहीं दिया? तुम एकदम ऊपर चले आए।"

नरेन सोच रहा था कि काश वह वाकई एकदम ऊपर चला जाता।

लेकिन आज माँ की वाणी रोज से कुछ ज्यादा ही मिठास लिए हुए है, उसने मार्क किया।

"नहीं माँ, क्या कहेंगे वे ? काफी कुछ तो मैं इसलिए परेशान हूँ कि तुम सब लोगों को मैं बेकार ही में परेशान किए हुए हूँ। माँ, मैं एक पल को भी नहीं भूलता कि मैं बेकार रहकर घर पर एक बहुत बड़ा बोझ हूँ; लेकिन मैं''''मैं'''''', नरेन माँ के सामने ही रुआँसा हो गया।

"अरे नहीं रे। ऐसे थोड़े ही कहते हैं भैया। तेरे पिता जी एक तो काफी बूढ़े हो गए हैं, उस पर जब से उनकी आँखें गई हैं, स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा हो गया है। लेकिन इस सब के लिए मैं तो हूँ। तुझे अगर कुछ कह दिया हो, तो तू बुरा न मान। इस उम्र में तो सच पूछो बेटा हम दोनों ही सठिया गये हैं। फिर भी, तू तो जानता ही है कि तेरे पिताजी ज्यादा गुस्से क्यों होते हैं ? घर का खर्चा बड़े भइया के जिम्मे है, वह सब करता भी है लेकिन क्या इतने से घर और बूढ़े माँ-बाप सुखी रह सकते हैं ? तेरे पिता जी को भी सबसे ज्यादा भरोसा तुझी पर रहा है। अब भी है। सच बता, अगर बड़े की जगह तू होता तो क्या तू भी ऐसे ही करता ?''''नहीं न। बस इसी से ज्यादा दुःख उन्हें है कि तू अभी तक कहीं हिल्ले से नहीं लगा। अरे, हम लोगों को क्या फिकर कम है ? हमें भी क्या जूते खाने ही का शौक है ? अब देख तो, घर का पूरा काम माधुरी करती है और बहूरानी हैं सो इस वखत भी पता नहीं किस सहेली के साथ गई हैं सपाटा करने। आते ही खौंखियाना शुरू कर देगी। अरे, मेरी बच्ची क्या इसी तरह पिसने को है ?''''" कहते-कहते माँ का गला भर आया। नरेन चुपचाप बैठा सुनता रहा। यकायक पूछ बैठा, "मधु कहाँ है, माँ क्या कर रही है ? उसे बुलाना तो।"

माँ की आँखों में आँसू आ गए थे। आंचल से पोंछते हुए बोली, "अरे हाँ, मैं तो भूल ही गई थी। देखो मेरी याद को भी क्या हुआ है। रसोई में ही होगी अभी बुलाती हूँ।" माँ कमरे के बाहर छज्जे पर चली गई थीं। थोड़ा आँगन में झुकते हुए उन्होंने आवाज लगाई, "माधुरी।''''जरा

ऊपर माना।" कहकर माँ फिर अन्दर आ गई थीं। थोड़ी देर में माधुरी ऊपर आ गई।

बेटी, बेटे के बीच बैठी माँ के चेहरे पर अब विषाद की एक भी रेखा नहीं थी।

"क्यों बेटी, रतन आ गया?"

"नहीं माँ। भैया तो सुबह ही कहकर गए थे, रात को दस से पहले नहीं आएँगे।"

"अच्छा, अच्छा, और बहू?....."। इस बार माधुरी थोड़ा नाराज हो गई लगी। बात का सीधा जवाब नही दिया।

"आज कौन सी तारीख है, माँ?"

"तीन, क्यों?"

"आज पिता जी की पेंशन मिली थी?" माँ माधुरी की जिरहबाजी से घबरा सी गई।

"मिली थी न?" माधुरी ने जोर दिया।

"हाँ। मगर तू यह सब....यह सब क्यों कह रही है?"

"भैया को सुना रही हूँ ताकि उन्हें भी पता रहे।"

"माधुरी!"

"कहने दो माँ। कह लेने दो। तुम मुझे कभी कुछ नहीं कहने देतीं।"

"उसे मत डाँटो माँ।" अब तक बुत बना खड़ा नरेन भौंचक सा था।

"हाँ तो आज पेंशन के रुपये मिले थे, तो?" नरेन ने पूछा।

"तो क्या भैया? वे रुपये भाभी के हाथों में हमेशा की तरह दे दिए गए हैं, तो वे आज भी हमेशा की तरह रात का शो देखकर ही वापस आएँगी, और क्या? माँ तो सब कुछ जानती हैं, फिर भी पूछती हैं।"

"बस कर माधुरी, तेरा तो सिर फिर गया है आज। इतना सारा तू कह गई!?" माँ आश्चर्य और दुःख में सने किसी विचित्र भाव को लिए नीचे उतर गई।

नरेन माँ को जाते हुए देखता रहा। उसे लग रहा था जैसे उसे बर्फ

की दो सिल्लियों के बीच एक अरसे तक दबाये रखा गया है और आज अचानक खुले में अभी-अभी छोड़ दिया गया है ।

तभी उसे ध्यान आया कि माधुरी भी खड़ी हो गई है ।

"बैठ जा मधू ।" कहकर नरेन पीछे घूम गया । वह अपने आप को इस स्थिति में नहीं पा रहा था कि किसी भी तरह की कोई बात कहे । काफी कोशिश की उसने कि वह संयत हो सके लेकिन जब माधुरी ने उसे पुकारा तब भी उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं । हृदय भी भरा हुआ था ।

"अब मैं इस घर में नहीं रह सकता मधू ।"

"क्यों भैया ?"

"ये लोग तुमसे पेंशन के रुपये भी ले लेते हैं ?"

माधुरी ने इस बार कोई जवाब नहीं दिया ।

"और यह बात तुमने भी मुझे कभी नहीं बताई ?"

"माँ, बाबूजी दोनों ने मिलकर मना किया हुआ था ।"

"तो ठीक है, रहो तुम भी माँ और बाबू जी के साथ । मैंने फैसला कर लिया है कि मैं यहाँ से आज ही चला जाऊँगा ।" नरेन ने एक साँस में ही पूरी बात कह दी ।

"अरे वाह भैया । अब तो तुम जान गए हो, तो भी ?…"

"जान गया हूँ, तभी तो…"

"लगता है, जानकर भी तुम्हें कोई खुशी नहीं हुई ।"

"खुशी ।" नरेन चौंका ।

"हाँ, हाँ । खुशी ।"

"तुझे पता है न मधू, तू क्या कह रही है ?"

"हाँ भैया, मैं पूरे होश में हूँ । जिस दिन पिता जी को पेंशन मिलती है, रुपये चुपचाप भाभी के हाथों में सरक जाते हैं और जानते हो भैया, उस दिन घर में पूरी-पूरी शांति रहती है । माँ को भी कोई कुछ नहीं कहता, बाबूजी को भी कोई नहीं कोसता और तुम्हारी बहन को भी डाँट नहीं पड़ती । भैया, तुम जान गए न; एक दिन, सिर्फ एक दिन तो कम से कम

मुझे भाभी की डाँट-फटकार नहीं सुननी पड़ती। बोलो भैया, क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी बहिन महीने के तीसों दिन डाँट-फटकार सुनती रहे, लगातार ? एक दिन तो मिलता है उसे....."

माधुरी आकर नरेन के कन्धे से लग गई थी और फफक-फफक कर रोने लगी थी। नरेन को पता नहीं क्या हो गया था, आँखें नम थीं, कलेजा जल रहा था।

९

"तेरा माथा तो एकदम जल रहा है रे।" सुमन की चारपाई पर बैठा अशोक चिन्तित हो गया। कल से सुमन चारपाई पर पड़ा था। कुछ खाया-पिया भी नहीं था। अशोक की माँ तो बुरी तरह घबरा गई थीं। अच्छे-भले लड़के को यह क्या हो गया?

इस समय माँ दवा लेने गई थीं और अशोक सुमन के पास अकेला बैठा था। सुमन चारपाई पर निढाल हो पड़ा था और कभी-कभी सर गर्दन और हाथ पैरों को पटकते हुए छटपटाने लगता था। शायद उसे होश भी नहीं था।

अशोक ने किसी को इस तरह करते नहीं देखा था। इसीलिए उसे और ज्यादा चिन्ता हो रही थी।

"कैसा महसूस हो रहा है सुमन।" अशोक उस पर झुक आया। सुमन सिर्फ कराहता रहा।

"सुमन ! सुमन ! तुझे क्या हो गया भइया ?"

"दादा !" सुमन ने अपनी पलकें उघार ली थीं, "दादा ! तुम कहाँ बैठे हो ?"

"मैं यहाँ हूँ सुमन, तेरे पास। बिल्कुल नजदीक।" अशोक ने सुमन का हाथ पकड़ लिया था।

"दादा, मुझे कुछ सुझाई नहीं दे रहा। मेरा सर फटा जा रहा है, ओह···अं···।"

"धीरज रख रे। माँ दवा लेने गई हैं; अभी मिन्टों में ठीक हो जाएगा तू।" अशोक वाकई घबरा गया था। सुमन ने फिर आँखें मींच ली थीं। अधिक दर्द और बुखार की वजह से वह बेतरह चीख रहा था।

थोड़ी देर में माँ डाक्टर को लिए आ गई। अशोक उठकर खड़ा हो गया।

डाक्टर ने झुककर नब्ज देखी। कानों पर स्टेथिस्कोप चढ़ाकर सुमन के सीने का परीक्षण किया। सीने का परीक्षण उसने दुबारा किया। बुखार तो तेज था ही, सीना भी बेतहाशा धड़क रहा था। टेम्परेचर देखा, एक सौ तीन था।

बगल में रखे तख्त पर बैठकर डाक्टर ने एक परचे पर सुमन के लिए कुछ दवाइयाँ लिखीं और इन्हें ले आने के लिए अशोक फौरन चला गया। बैग से सिरिंज और एक इंजैक्शन निकालकर डाक्टर ने सुमन की बाँह टटोली।

इंजैक्शन लगने के बाद भी सुमन को होश नहीं आया था।

"घबराने की कोई बात नहीं है। कोई खास बीमारी नहीं है, जल्दी ही ठीक हो जाएगा।···हाँ, इसे अकेला मत छोड़िएगा।" कहकर डाक्टर अपना बैग उठाकर जाने लगा तो अशोक की माँ ने टोका "डाक्टर साहब, हमारा सुमन बहुत नाजुक है। वाकई कोई खास बात तो नहीं है डा० साहब ? देखिए आप मुझसे····"

"नहीं, नहीं। कोई विशेष बात नहीं है। ठीक तो हो ही जाएगा। जरूरत पड़े तो फिर बुलवा लीजिएगा। मैं कहीं बाहर तो हूँ नहीं, यहीं मुहल्ले ही में तो हूँ।"

"अच्छा डाक्टर साहब !" और डाक्टर चला गया।

डाक्टर चला गया तो अशोक की माँ को ख्याल आया कि उन्होंने डाक्टर को तो कुछ दिया ही नहीं, "खैर, ठीक हो जाए, सब पहुँचता रहेगा।" उन्होंने सोचा और फिर सुमन के कमरे में चली गई।

थोड़ी देर में अशोक दवाइयाँ तथा कुछ फल लेकर बाजार से आ गया।

"डाक्टर गए, माँ ?"

"हाँ बेटा। लेकिन उनकी फीस रह गई है। हड़बड़ाहट में मुझे कुछ याद ही नहीं रहा। तुम दे आइयो !"

"दे आऊँगा माँ, यह बताओ सुमन कैसा है अब ?" अशोक सुमन के चेहरे पर झुक आया था। सुमन की पलकें बन्द थीं जो कभी-कभी काँपने लगती थीं।

"अभी एक इंजेक्शन लगा गए हैं।"

अशोक ने एक लम्बी साँस खींची और फिर सिर लटकाए तख्त पर बैठ गया जाकर।

साँझ हो गई थी और बैठक की पिछली खिड़की के बाहर चिड़ियों ने चहचहाना शुरू कर दिया था। चिड़ियों का चहकना अशोक को अच्छा नहीं लग रहा था। माँ ने बत्ती जला दी थी और बल्ब के चारों ओर मच्छरों ने तत्काल भुनभुनाना शुरू कर दिया था। अशोक को लग रहा था कि सभी पतंगे आज काफी सुस्त हैं, मानो उन्हें भी सुमन की तरह तेज बुखार हो।

यकायक सुमन के दाँत पीसने की आवाज से अशोक चौंका। दौड़कर पास गया तो देखा कि सुमन के मुंह से फेन आ रहा है और उसकी दाँती भिच गई हैं, हाथ पाँव ऐंठने लगे हैं।

अशोक ने घबराकर माँ को पुकारा।

दोनों ने सुमन को कसकर पकड़ रखा था और चम्मच से उसके दाँत खोलने का प्रयास कर रहे थे। थोड़ी देर में दौरा खत्म हो गया और सुमन का शरीर एकदम ढीला पड़ गया।

अशोक ने जल्दी से एक टेबलेट सुमन को निगलवाई और लिटा दिया। अब वह शांत था।

शायद उसकी तकलीफ भी कम हो गई थी।

"अशोक ! तू कल अपने मौसा जी को चिट्ठी लिख दे। मेरा तो जी घबरा जाता है।"

"नहीं माँ।" अशोक ने मुस्कुराने की कोशिश की, "घबराने की कोई बात नहीं है। वह ठीक हो जाएगा। कभी-कभी ऐसे भी हो जाता है।"

"तुमने मुझे नाली में धक्का दे दिया है दादा। दादा मुझे उठाओ। मेरे सारे कपड़े गन्दे हुए जा रहे हैं दादा। दादा, दादा ! मेरे मुँह में कीचड़ भर गया है।...." करीब आधी रात को सुमन का बुखार फिर तेज हो गया था और वह बेहोशी की हालत में बड़बड़ा रहा था।

अशोक पास ही बैठा उसका माथा सहला रहा था।

"नहीं सुमन ! तुम बिल्कुल ठीक हो। तुम बिस्तर पर हो सुमन। तुम बिस्तर पर हो, आराम से।....".

१०

हारा-थका तो था ही नरेन, दरवाजे पर ही माधुरी को खड़ी देख खून खुश्क हो गया उसका।

"आप एकदम अन्दर नहीं जा सकते भैया।" माधुरी ने कड़कते हुए गंभीर वाणी में उद्घोष किया।

"क्यों?" जैसे इतने में ही नरेन के गले का गीलापन खत्म हो गया हो।

"मेरे पास खुशी की खबर जो है, तुम्हारे लिए," माधुरी थोड़ा मुस्कुराई तो नरेन की जान में जान आई।

"अरे तूने तो मेरी जान ही ले ली होती। खैर…बोल क्या बात है,

"देखो भैया !" माधुरी तुनक गई थी इस बार, "ऐसी बातें मत किया करो। मुझे घर से निकालने में तुम्हें खुशी नजर आती है ?"

तुरन्त ही माँ और बाबूजी का झुर्रियों भरा बेजान चेहरा नरेन की आँखों के सामने फिर गया। फिर दो चेहरे और आ गए आँखों के आगे।

वह चुप रहा कुछ देर, फिर बोला—"अच्छा, तो तुझे पता है, कौन सी खबर मुझे खुश करेगी ?""अरे मधू," उसने माधुरी को अन्दर ठेलते हुए कहा, "कमबख्त नौकरी ही नहीं मिल जाती जब तक, मेरे लिए कौन सी बात खुशी की हो सकती है, भई तुझे पता हो तो हो, मुझे इसका कोई पता नहीं है।"

वे दोनों धीमे-धीमे गलियारा पार कर ऊपर के जीने तक पहुँच गए थे। नरेन ने पहली सिढ्ढी पर पैर रखते हुए माधुरी से पूछा, "अच्छा बता तो, वह क्या बात है ?"

"नहीं बताती", माधुरी ने नाराज होने का भाव दिखाया, "तुमने मेरी कोई अहमियत ही नहीं समझी। एकदम अण्डर एस्टीमेट कर लिया ! अब अपने आप जाकर देख लो, कौन बैठा है तुम्हारे कमरे में।"

"मेरे कमरे में !" नरेन चौंका। उसके दिमाग में बिजली सी कौंध गई। झट से पैर नीचे खींच लिये और माधुरी को मनाने लगा।

"बता न मधू ! कौन है ऊपर ?" उसके माथे पर बल पड़ने शुरू हो गए थे।

"न बताऊँ तो ?" माधुरी ने बड़े लाड़ से कहा।

"तो मैं तेरा गला दबा दूँगा। बता न।" नरेन का गुस्सा और व्यग्रता बड़ी तेजी से बढ़ी जा रही थी। उसे पता ही नहीं लगा कि कब उसने वाकई माधुरी का गला पकड़ लिया।

"अरे रे ! भैया ! ! यह क्या कर रहे हो ? मार डालोगे मुझे ?" नरेन को होश आ गया और वह अपने आप पर झल्ला पड़ा। बिना बात की बात पर उत्तेजित हो जाता हूँ।....

"ओह मधू ! तू ऐसे क्यों कर रही है, सीधे-सीधे बोलती क्यों नहीं ?"

नरेन ने इस बार अपेक्षाकृत धैर्य और विनम्रता से काम लिया।

"हाँ, अब सीधे-सीधे बता दूँ तभी खैर है।" माधुरी एकदम पीछे हट गई, "तुम्हें याद है भैया, बचपन में एक रीता नाम की लड़की हुआ करती थी? वह आई है, ऊपर तुम्हारे कमरे में है।" माधुरी एक पल को रुक गई।

"मेरे कमरे में?....रीता....।"

"पूरी बात सुनो भैया, पहले ही मेरा गला मत पकड़ लेना। और वो एक आपके दोस्त हुआ करते थे, जो कैरम ज्यादा बढ़िया खेला करते थे। तुम्हें याद है...."

"हर्ष?"

"हाँ-हाँ! हर्ष। दोनों मियाँ बीबी ऊपर बैठे हैं, जाओ।"

"मियाँ बीबी!" नरेन की आँखें इस बार खुशी से फैल गईं और शाम के अँधेरे में वर्षों से खोई हुई आँखों की चमक नरेन की आँखों में उतर आई। "अरे मधू तूने तो...."

"वाकई खुशी की बात सुनाई न!" माधुरी ने वाक्य पूरा किया।

"खैर अब जाओ, वे तुम्हारे बिना काफी बोर हुए हैं दिन भर। इन्तजार कर रहे हैं।"

नरेन झट से मुड़कर ऊपर चढ़ने लगा और माधुरी उसे खुशी-खुशी ऊपर चढ़ते देखती रही। कितने दिनों बाद आज खुश हुआ है नरेन थोड़ा सा; उसने सोचा और फिर उसकी पलकें भीग आईं।

"देख हर्ष, मैं तुझे उठाकर छत से नीचे दूर खाली खेतों के पार अभी फेंक दूँगा।" नरेन ने हर्ष की किसी बात पर रीता को सुनाते हुए कहा और फिर हर्ष के पास ही चारपाई पर बैठ गया। उसकी बात सुनकर हर्ष और रीता दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े।

"सुना रीता, इसके हाथ से कभी वाली-वाल की गेंद तक फील्ड के बाहर गई नहीं, मुझे उठाकर फेंक देगा ?''''अबे साले, एक ही प्वाइंट पर मैच हार जाओगे।" हर्ष ने भी नरेन की चुटकी ली।

लेकिन नरेन इस बार गंभीर हो गया था। पिछले दो साल से उसकी नियति ही ऐसी हो गई है कि हर मिनट बाद तो गंभीर हो जाता है। इन दो सालों में उसे, हँस पाने लायक एक आज ही तो मौका मिला है और वह इसमें भी एकदम हल्का नहीं हो पा रहा है। बातों-बातों में ही कोई-न कोई ऐसी बात जरूर आ जाती है कि उसका मन टीसने लगता है।

"तुम्हें पता है हर्ष, यूनिवर्सिटी छोड़ने से पहले वाली-वाल की चैम्पियन-शिप मेरे हाथों से जाती रही थी।" नरेन कहते-कहते कुछ उदास हो चला था, "मेरी टीम उस दिन भी बहुत अच्छा खेली थी। उसे सिर्फ़ मेरी वजह से ही हारना पड़ा था। दूसरे दिन के अखबार में भी निकला था, इट वाज आनली मिस्टर नरेन हू'''" नरेन ने अपनी निगाहें सामने की दीवार पर टिका दी थीं। उस दिन की याद से उसे बुरी तरह चोट पहुँची थी। लग रहा था जैसे यह कल की ही बात हो और उसके हारने का दर्द एकदम ताजा हो।

"ओह छोड़ो यार! क्या पचड़ा लेकर बैठ गए। मारो गोली। वाली-वाल से ही जिन्दगी नहीं बन जाती।" हर्ष ने बातचीत का रुख मोड़ना चाहा।

"तुम ठीक कहते हो यार। अब तो मैं सोचता हूँ कि बजाय वाली-बाल को चैम्पियन-शिप या ऐसी ही किसी होड़ के अगर मैंने अपनी जिंदगी बनाने की कोशिश की होती तो ज्यादा अच्छा रहा होता। लेकिन मित्र, एक बात का हमेशा ख्याल रखना, जिस व्यक्ति की महत्वाकांक्षा ज्यादा लम्बी हो जाती है, वह व्यक्ति जरूर बर्बाद हो जाता है, मेरी तरह से। आज जो दिन मेरी आँखों के आगे हैं, मैंने पहले कभी इन रूखे रंगों के बारे में विचार नहीं किया था। क्या तुम भी मानते हो हर्ष, कि भोगने के लिए बहुत कुछ पहले से ही नियत होता है ?'''"

हर्ष ने देखा, वातावरण वाकई बोझिल हुआ जा रहा है, तब उसने हँसते हुए कहा, "छोड़ो यार ! मानने न मानने से कुछ नहीं होता । नथिंग इज फाइनल इन दिस वर्ल्ड । किसी पूर्व धारणा में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा, जो कुछ समक्ष है, प्रत्यक्ष है, बस उसी वर्तमान क्षण को मैं जीवन्त मानता हूँ । भूतकाल किसी प्रेत की तरह पीछे पड़ जाए तो सिवाय पछतावे के और कुछ नहीं हाथ आता और भविष्य की भी ठीक इसके विपरीत हालत है । साथ पछतावे हों तो कोई भविष्य नहीं होता । मैंने तो गणित से एम० एस-सी० किया है और मुझे निगेटिव वैल्यूज़ पर पूरा-पूरा यकीन है । भविष्य को मैं निगेटिव पास्ट समझता हूँ, भूत की प्रतिच्छाया । इसीलिए जो क्षण हाथ में आ गया है, मेरे विचार से उसे गँवाना कतई अक्लमंदी का काम नहीं है । नरेन, क्या इससे पहले हम दोनों ने साथ-साथ कई बार एन्ज्वाय नहीं किया है जब मेरी परिस्थितियाँ एकदम विकट थीं, पलश और किटी के बीच मैं तबाह हो गया था ।" कहकर हर्ष एकदम से चुप हो गया ।

नरेन भी हर्ष का इशारा समझ गया था ।

"ओह सो सौरी हर्ष ! क्या बताऊँ यार, नौकरी के पीछे भटकते-भटकते इन दो सालों के अन्दर मैं भी काफी एकोन्मुखी और हताश हो गया हूँ । शीशे के सामने कभी भूले से पड़ जाता हूँ तो कभी-कभी अपने आपको देखकर चौंक उठता हूँ । मेरी खुद समझ में नहीं आता कि मेरा चेहरा इतना छोटा कैसे हो गया है । तुम्हें कुछ फर्क लगता है मुझमें ?"

"खैर चेन्जेज तो सब में आते हैं, आने भी चाहिए । फर्क तो हममें भी आया है । मुझे और रीता को तुमने अलग-अलग देखा था । अब साथ-साथ देखने पर भी क्या हम वैसे ही दिखते हैं ? अरे यार एक मजे की बात बताएँ ।" हर्ष की आँखें आकस्मिक खुशी से दिप रही थीं, झट से उसने अपना पूरा शरीर नरेन की ओर मोड़ लिया था, "कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मैं हर्ष नहीं हूँ,...बल्कि हर्ष की खोल में कोई और घुस आया है । ऐसा एहसास पहली बार तब हुआ था जब हम लोग इण्टर कालेज

छोड़कर यूनिवर्सिटी में दाखिल हुए थे। तब भी हैरानी होती थी कि हमारे माँ बाप हमें अपना बेटा मानते थे और हमें लगता था कि हमारे साथ ज्यादती हो रही है। क्योंकि तब अन्दर से कुछ और ही महसूस होता था, हमें खुद नहीं लगता था कि हम उनके बेटे हैं या कि किसी के भी बेटे हैं।" एक अत्यन्त रहस्य-भरी बात को कहने और सुनने के बाद के रोमांच को महसूस करने से वे सब दो पल चुपचाप से बैठे रहे।

नरेन भी चुप था। वह सोच रहा था कि अब क्या सोचे? इन दो सालों के अन्दर उसके सभी भाव एक दूसरे से मिलकर गड्ड-मड्ड हो गए थे और वह उन्हें अलग-अलग छाँटकर रखने में अपने आपको समर्थ नहीं पा रहा था। चाहता जरूर था कि इस वक्त कुछ बोले या सुने पर अब उसे महसूस हो रहा था कि उसके पास बोलने या सुनाने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह गया है और कमरे की चुप्पी काफी खल रही है। कोई-कोई स्थिति ऐसी आती है कि अनचाहा भी चुपचाप झेलना पड़ता है।

रीता शुरू से ही खामोश बैठी थी। इस भयंकर चुप्पी को तोड़ने का उसी ने हौसला किया इस बार।

"नरेन भाई साहब! आपको पता नहीं है आपके पीछे इन्होंने आपकी तारीफों के कितने पुल बांधे हैं और अब देखिए आप चुप हैं तो आप भी खामोश बैठे हैं।"

"हाँ रीता! यह बुरी बात है कि हम लोग चुप बैठे हैं। मेरे पास तो कोई खास बात है नहीं, तुम दोनों को सुनाने के लिए, लेकिन तुम दोनों ने तो चुपके-चुपके शादी भी कर ली, कब कर ली मुझे तो खबर भी नहीं दी और अब तुम दोनों की ज्यादती है कि मेरे सामने चुप बैठो। तुम्हीं लोग सुनाओ, मुझे तो सुनने में ही बहुत भला लगेगा।"

"भाई साहब! आपने हमें अब तक बहुत सरप्राइज़ दिए हैं, यह तगड़ा सरप्राइज़ आपको देने के लिए हमने रख छोड़ा था। सच तो यह है नरेन, हमें पता भी नहीं था कि हम दोनों कभी विवाह करके एक भी हो जाएंगे लेकिन यह सब हो गया और बड़ी जल्दी हो गया। जानते हो,

विदाई के वक्त सिर्फ मेरी माँ मौजूद थीं, उनके अलावा मैं किसी को नहीं बुला पाया। वक्त ही नहीं मिला। इतनी जल्दी सब कुछ हुआ कि मैं तो घबरा ही गया था। वह तो माँ ने सब कुछ ठीक कर लिया नहीं तो""। तुम्हें विश्वास नहीं होता न ? खैर फिर बताऐंगे सभी कुछ लेकिन देख ले, शादी के बाद सीधा तेरे ही पास आया हूँ पहले ! और तू यार शोर करने पर तुला है हमें।" हर्ष के चेहरे पर अन्तरंग स्मित की छाप थी।

"अच्छा साले बनो मत। शादी के बाद सीधा तेरे ही पास आया हूँ पहले।" नरेन ने नाटकीय टोन में कहा, "कोई एहसान किया है मुझ पर ? मैंने तो तुम्हें वर्षों पहले ही पति-पत्नी बना दिया था बेटा। अच्छा अब थोड़ा अकेले में गपशप करो। मैं नीचे देखूँ, खाना-वाना तैयार हुआ या नहीं। पेट में तो चूहे कत्थक पेश कर रहे होंगे, क्यों रीता ?" कहते हुए नरेन उठ गया।

"यार अपने पेट में तो बिल्लियों की रेस हो रही है।" बाहर जाते नरेन की पीठ पर जोर की आवाज चिपकाते हुए हँस पड़ा हर्ष, "बड़ा मूडी आदमी है।"

"परेशान बहुत है।" रीता ने उत्तर सा दिया।

"परेशान नहीं होगा तो क्या होगा ? नौकरी लगी नहीं और यह गम बँटाने के लिए""" हर्ष उठकर रीता की ओर बढ़ चला।

"अरे, अरे ! आप वहीं बैठिए," हर्ष को अपने नजदीक आते देख रीता बोल पड़ी, "आप भी क्या आदमी हैं। यहाँ यह सब ? कोई आता होगा नीचे से अभी।"

"आने दो, कोई गैर नहीं आएगा।" हर्ष लापरवाही से जाकर रीता की बगल में बैठ गया और अपनी दोनों भुजाओं के बीच उसने रीता को कस लिया।

"तुम्हें पता नहीं रीता, जब तुम पहले दिन गौरी के घर आई थीं, मैं कैरम खेलने में व्यस्त था। तुम पर पहली बार निगाह पड़ी थी तभी से मुझे कुछ हो गया था। फिर तुम भी बोर्ड पर मेरे अपोजिट आ गईं

क्या तुम अब भी अपने आपको उतना ही चालाक समझती हो रीता ? याद
हैं तुम्हें जैसे ही
गए थे । लेकिन
चाल में । नरेन
देख रहा था, यह
हर्ष तू रीता से म
कहते हैं ।" और

"हटिए । ह
के मरीज हैं ।"

हर्ष ने रीता

११

सुवह चाय पीने के तुरन्त बाद ही बड़े भैया चले गए थे और भाभी को भी पता नहीं कौन सा खास काम निकल आया था; वे भी खुल्दाबाद किसी सहेली के यहाँ चली गई थीं। घर में माधुरी, नरेन, माँ और बाबूजी तथा रीता और हर्ष रह गए थे।

चाय के बाद वे सब नीचे की कोठरी में पिताजी की चारपाई के इर्द-गिर्द जमा हो गए थे।

बहुत दिनों के बाद नरेन पिताजी की चारपाई के पास इस तरह सबके साथ बैठा था सो उसे तो बड़ा अजीब सा महसूस हो रहा था। काफी कुछ उसे शर्म जैसी भी महसूस हो रही थी।

थोड़ी देर बैठने के बाद वह उठ गया।

"भई तुम लोग बैठो, मैं अभी आता हूँ," कहकर वह ऊपर अपने कमरे में चला गया। हर्ष, रीता, माधुरी या माँ, इनमें से उसे किसी ने नहीं रोका-टोका। फिर ये सब आपस में बातें करने लगे। बीते हुए दिनों की बातें, जब हर्ष और रीता भी इसी मुहल्ले में रहते थे और नरेन का दोनों के घर खूब आना-जाना था। क्या दिन थे वे भी। तब रतन भैया यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे। पढ़ते क्या थे, दादागीरी करते थे। समझते थे कि इस तरह से इतिहास बदल देंगे वे। लेकिन ऐसे लोगों का होता क्या है? हाँ, अभी तक यूनिवर्सिटी में उनका नाम तो लिया जाता है दादागीरी के लिए।

तब नरेन के पिताजी की आँखें बिल्कुल ठीक थीं और उनमें इन बच्चों के लिए अपरिमित स्नेह छलकता रहता था हर वक्त। आज भी किसी को याद नहीं आ रहा कि उन्होंने तब कभी किसी को भी डाँटा हो, न नरेन को और न रतन को। माधुरी को तो वे आज भी कुछ नहीं कहते। अरे सिर्फ़ वे देख ही तो नहीं सकते अब, लेकिन महसूस भी नहीं करते क्या? अब पड़े-पड़े तो कौन चिड़चिड़ा नहीं हो जाता? और फिर वे दिन भर नरेन और माधुरी के बारे में ही तो सोचते रहते हैं। जब कोई सोचते-सोचते सोचों के ही जालों में उलझता चला जाएगा और उसके हाथ में कहीं भी 'अन्तिम' का प्रश्न नहीं पड़ेगा, ऐसी हालत में वह कर भी क्या सकता है? वे नहीं चाहते क्या कि माधुरी के जल्दी ही हाथ पीले हो जायें और वह इस यंत्रणादायी कारागार से छुटकारा पा जाए? लेकिन कोई अच्छा लड़का ही नहीं मिलता तो वे क्या करें? अब यूँ ही तो उसे झोंक नहीं देंगे कहीं। नरेन शादी के नाम से कितना बिचकता है, यह भी वे अच्छी तरह जानते हैं। और ठीक भी है, जब तक नौकरी न लगे उसकी, वे उस पर न तो जोर देते हैं और न ही वह कभी इसके बारे में सोचता है। वैसे तो उन्होंने सोच रखा था कि नरेन की पढ़ाई पूरी होने के बाद ही वे उसके शादी भी कर देंगे, लेकिन क्या करें हालात ही बदल गए। रतन की नहीं कर दी थी उन्होंने? अब उनकी आँखें चली गई हैं तो····

"बेटा, मेरी आँखें जरूर चली गई हैं लेकिन नरेन घुल-घुल कर कैसा हो गया है, यह मुझसे छुपा नहीं है हर्ष !"

"सब ठीक हो जाएगा पिताजी, अभी दिक्कत है ही थोड़ी, लेकिन दिन हमेशा एक से थोड़े ही रहते हैं। आप धैर्य तो रखें और हाँ, नरेन की जरा देखभाल रखा कीजिए माता जी, उसे कभी कुछ मत कहा करिये। वह तो आदमी ही बड़ा अजीब है। खुद ही हमेशा दूसरों के दिमागों में आए सैकिण्ड थाट को सोच-सोचकर परेशान होता रहता है वह।"

"हर्ष ! एक उसी पर तो भरोसा है। मैं जानता हूँ कि वह काफी समझदार है और यह भी सोचता हूँ कि जहाँ कुछ थोड़ा ठीक हुआ, हमारे दिन फिर से लौट आएँगे। इसी आशा में तो जी रहा हूँ, वरना अब इस जिन्दगी में और क्या रह गया है ? क्या देखना है मुझे ?"

"ऐसा क्यों कहते हैं पिताजी। आपकी उमर तो बहुत लम्बी है। नरेन कह रहा था कि जैसे ही उसकी नौकरी पक्की हुई और उसने कुछ पैसा इकट्ठा किया वह आपकी आँखें बनवाएगा। कोई नैचुरली तो आपकी आँखें गई नहीं, आप फिर से खूब देख सकेंगे।"

"नहीं बेटा। नरेन लग जाए तो सबसे पहले माधुरी का हिसाब करना है। कोई अच्छा लड़का हो तो तुम भी निगाह में डाले रखना।"

हर्ष ने उत्सुकतावश माधुरी की ओर देखा। आम हिन्दुस्तानी लड़कियों की तरह शादी की बात सुनकर शर्म से लाल-नीली नहीं हो गई थी वह, बल्कि किसी प्रौढ़ नारी की तरह कह रही थी, 'नहीं भाई साहब। भैया के लगते ही सबसे पहला काम होगा पिताजी की आँखों का आपरेशन ! और दूसरा काम होगा नरेन भैया की शादी।"

"अरे नरेन भैया की शादी तो कल ही हो जाएगी, तुम तो बस अपनी शादी के बारे में सोचो बन्नो।" इस बार रीता ने माधुरी पर आक्रमण किया तो माधुरी शर्मा गई जैसे वाकई दुल्हिन बन गई हो।

"अच्छा तू शादी करके बहुत शैतान हो गई है री ! क्या नरेन भैया से भी कल तू ही और शादी करने जा रही है ?"

"तुमने समझ क्या रक्खा है माधुरी, वह भी कर सकती हूँ लेकिन एक शर्त पर, इन्हें तुम सँभाल लेना।" रीता ने कनखियों से हर्ष की ओर देखा।

"ऐ रीता की बच्ची !" हर्ष गुर्राया।

और माधुरी तो जैसे रीता को दबोच हो बैठी। रीता पीछे की ओर झुक गई और माँ की गोद में धँस गई।

"उई, बचाओ माँ।"

और कमरा समवेत हँसी से गूंजने लगा।

"ऐ, माधुरी !" रीता ने ऊपर से, आँगन से गुजरती माधुरी को आवाज दी। माधुरी ने खड़े होकर ऊपर की ओर देखा तो रीता ने उसे ऊपर आने का हाथ से इशारा किया।

माधुरी चुपके से ऊपर आ गई।

"रीता ! कोई खास बात हो तो जल्दी से कह डालो। भैया ज्यादा देर तक नहीं घूमते, भाई साहब को लेकर आते ही होंगे। और हाँ, अभी उन दोनों के लिये कुछ नाश्ता-वाश्ता भी तो तैयार करना है।"

"तब तो बैठो, नाश्ता वगैरह तो बाद में बन जायगा। दो एक जरूरी बातें करनी हैं।"....अब भई, बुरा तो मानो मत, मुझे तो बड़ी भाभी से बड़ा डर लगता है, वरना वो सब तो मैं कर देती...."

"रीता ! अरे, मैं तो जिन्दा हूँ। तू दो दिन के लिए आई है। तेरे यहाँ आऊँगी तब भी तुझे रसोई में नहीं घुसने दूँगी।"

"यह बात नहीं है माधुरी। अच्छा बैठो तो। वाकई कुछ जरूरी बातें करनी हैं।"

और इसके बाद वे दोनों अन्दर कमरे में नरेन की चारपाई पर जाकर बैठ गई और फुसफुसा कर बातें करने लगीं।

"तुम नरेन भैया को नहीं देख रही हो माधुरी, क्या हालत हो गई है उनकी ?"

"क्या करूँ रीता, भैया के साथ-साथ परेशान मैं भी हूँ। वैसे मैं पूरा-पूरा ख्याल रखती हूँ भैया का।"

"वह बात नहीं माधुरी, एक लड़की तुमसे ज्यादा ख्याल रखेगी उनका जो तुम्हारी छोटी भाभी कहलाएगी, वह तुम्हें भी प्यार करेगी।"

"ओह रीता ! तुम भैया की शादी के बारे में सोच रही हो ?"

"क्यों माधुरी ? नहीं ?"

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं, लेकिन यह कोई आसान काम नहीं है। ....."माधुरी थोड़ा चिन्तित हो गई।

"ऐसी क्या बात है माधुरी ?"

"रीता !" माधुरी थोड़ी देर रुकी, "अब तुम्हें क्या बताऊँ, भैया की कोई बात कम से कम मुझसे तो छुपी नहीं है। उन्हें लड़कियों से सख्त चिढ़ है।"

"ऐसा क्या है माधुरी ?" रीता भी चिन्तित हो उठी थी।

"कोई भी लड़की जो उन्हें प्यार करना चाहेगी, वे उसे कभी नहीं चाहेंगे। हमारी तुम्हारी बात और है रीता !"

"अच्छा मधु ! मगर क्यों ?"

"यह न पूछो रीता ! इसे मैं शायद तुम्हें बता भी न सकूँगी।" माधुरी एकदम गंभीर थी।

रीता कुछ देर खामोश रही। फिर माधुरी की ओर सट गई और उसके कंधे पर हाथ रख उसकी ओर घूम गई।

"माधुरी ! तुम्हें पता है, तुम्हारे हर्ष भाई साहब ने मुझसे शादी क्यों की ? यह सब नरेन भैया का ही आशीर्वाद है कि आज हम दोनों साथ-साथ हैं, हमेशा के लिये। माधुरी, यह कोई ऐसी बात नहीं है कि मैं इसे भुला बैठूं, इतनी एहसान-फरामोश तो नहीं मैं। तुम विश्वास रखो माधुरी, नरेन भैया के लिये जो कुछ मुझसे करते बनेगा, मैं करूँगी। बहिन, क्या

तुम नहीं चाहतीं कि तुम्हारे भैया''''माधुरी तुम मुझे बताओ, वह बात जरूर बताओ माधुरी। मगर किसी नारी ने भूल से उन्हें पत्थर कर भी दिया है तो कोई उन्हें देवता भी बना सकती है, मधु, मत भूलो। मधु, तुम मुझे बताओ। जरूर कहो मधु!" रीता ने एकदम से माधुरी को झकझोर दिया। उसकी आँखें भर आयी थीं।

माधुरी ने एक पल रीता की ओर देखा और फिर उसके गले से लिपट गई, "रीता!" एक ठन्डी साँस ली उसने।

"जरूर बताऊँगी रीता। जरूर बताऊँगी। बताती हूँ। अभी लो।"

माधुरी उठकर नीचे चली गई। रीता वहीं बैठी-बैठी कुछ सोचने लगी। वह सोच रही थी कि आखिर ऐसी क्या बात हो सकती है जिसके बारे में माधुरी जैसी समझदार लड़की भी बुरी तरह चिन्तित है।

थोड़ी देर में माधुरी लौट आई। उसके हाथों में एक मोटी सी फाइल थी और एक बड़ा सा टीन का डिब्बा था।

"रीता! भैया की सख्ती का ख्याल करके मैं फिर कमजोर हुई जा रही हूँ। शायद''''शायद रीता मैं तुम्हें पूरी बात नहीं बता सकूँगी। फिर भी''''तुम तो काफी समझदार हो रीता, तुम खुद ही सब कुछ समझ लोगी।" कहती हुई माधुरी रीता के पास फिर से आकर बैठ गई।

"मुझे डर लग रहा है रीता। कहीं भैया इस बीच आ न जायें? तुम जरा दरवाजा बन्द कर दो।" माधुरी को लग रहा था जैसे वह कोई बहुत बड़ा गुनाह करने जा रही हो। उसका दिल भी बड़ी तेजी से धड़क रहा था।

"इतना मत घबराओ माधुरी, अब तुम अकेली तो हो नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।" कहते हुए रीता उठी और दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया।

माधुरी थोड़ा आश्वस्त हुई। फिर कहने लगी,—"यह सब कुछ मैं तुम्हें निरी भावुकतावश नहीं बताने जा रही रीता, बल्कि मुझे विश्वास है कि तुम जरूर कुछ करोगी। फिर भी, हम अगर कुछ न कर पाएँ, तो

यह सब तुम तक ही रहना चाहिए रीता !"

"कैसी बातें करती हो माधुरी।""अच्छा हाँ, अब शुरू करो, नहीं तो वे लोग आ जाएँगे।"

"हाँ, हाँ।" माधुरी ने कहा और फिर मोटी वाली फाइल घुटनों पर रखकर रीता को आमंत्रित किया।

फाइल खोलते वक्त माधुरी को लगा जैसे नरेन के जिस्म पर उगे किसी जख्म को वह नंगा करने जा रही है। उसे काफी पीड़ा और मानसिक यंत्रणा के बीच से गुजरना पड़ा, लेकिन वह सब कुछ सहन कर गई। इन दो सालों में वह भी काफी सहनशील हो गई थी।

"ये हैं रीता, तीन साल के अन्दर दो सौ के करीब आए पत्र ! जिन्हें मीना ने अपनी ससुराल से भैया को लिखा है और भैया ने इनमें से एक को भी नहीं पढ़ा है।"

"ठहरो मधु। पहले यह बताओ यह कौन सी मीना है ?""एक ये तुम्हारे पीछे रहती थी, वही तो नहीं ?"

"वही। अरे हाँ तुमने तो उसे देखा है। वही लड़की है, उसको दो साल पहले विदा भी हो गई है और अब वह ससुराल में है।"

"अच्छा ! लेकिन यह लड़की तो, जहाँ तक मेरा खयाल है, बुरी नहीं थी। देखने में भी काफी अच्छी लगती थी तब।'

"बड़ी होकर तो खूब अच्छी हो गई थी।"'और नरेन भैया के पीछे तो उसने अपनी जिन्दगी ही बरबाद कर ली। किस कदर दीवानी थी वह, मैं,तुम्हें नहीं बता सकती रीता। मुझे तो सब बातें बाद में पता चलीं जब भैया ने मीना का आना-जाना एकदम बन्द कर दिया। तब उसी पगली ने सब कुछ बताया मुझे। उससे पहले ही वह सब कुछ कर चुकी थी रीता !""मीना ने खुद बताया था कि उन दिनों उसके ऊपर एक नशा सा छाया रहता था और वह स्लीप वाकर की तरह उसी मदहोशी में छत की मुंडेर फलांग कर रात को इसी कमरे में आ जाती थी, उस वक्त या तो भैया पढ़ रहे होते थे या सो रहे होते थे। तुम तो जानती हो रीता,

भैया तो शुरू से ही रूखड़ रहे हैं इस मामले में। शर्माओ मत रीता।.... मैं आज एक बहुत बड़ा सच खोलने जा रही हूँ। तुम्हें अच्छी तरह याद होगा, हालांकि उन दिनों हम लोग काफी छोटे थे लेकिन निरे बच्चे भी नहीं थे। हर्ष भाई साहब तब यहाँ नहीं आए थे। एक....एक दिन नरेन भैया गुसलखाने में नहा रहे थे और हम तुम दोनों दरवाजे से सटे, किवाड़ों की दरारों के बीच से उन्हें देख रहे थे। मैं तो भाग आयी थी और तू उनके अण्डरवियर बदलने तक भी उन्हें देखती रही थी। यह तूने.ही कहा था कि तुझे पता भी नहीं लगा, कब दरवाजा खुल गया और तू पकड़ी गई थी। आगे की बात मैं नहीं कहूँगी रीता, तू ही अच्छी तरह से जानती होगी।

रीता, मीना ने भी यह मुझसे स्वीकार किया था कि नरेन दादा का तो उसे तिलभर सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। हमेशा वे भागते रहे और हमेशा वह अड़ी रही। उत्तेजना के अन्वेषण और चरम बेहोशी के क्षणों में वे सब कुछ कर गये लेकिन जब उन्हें होश आया तो उन्हें मीना से बुरी तरह नफ़रत हो गई।

लेकिन मीना आज भी भैया को इतना चाहती है कि बस पूछो मत। ये सारे के सारे पत्र जानती हो रीता, मैंने कैसे कलेक्ट किए हैं? बड़ी दिलचस्प बात है यह, लेकिन दिल हिला देने वाली।

रीता। मैंने तुझे बता दिया न कि मीना ने ससुराल जाने से पहले मुझे सब कुछ बता दिया था? उसके ससुराल जाने के तीसरे दिन ही नरेन भैया के नाम एक पत्र आया। इत्तिफ़ाक से वह पत्र मेरे हाथ लगा लेकिन शराफत के नाते वह पत्र मैंने भैया को थमा दिया। अब मुझे बहुत अफ़सोस हो रहा है रीता कि वह पत्र मैंने भैया को क्यों दे दिया? मैं आज तक नहीं जान पाई कि नई-नई पीड़ा को न झेल पाने की यातना से मुक्त कोई लड़की दुल्हिन बनने के तुरन्त बाद अपने प्रेमी को क्या लिख गई होगी? मीना भी, इन दो सालों में एक बार भी यहाँ नहीं आयी। कितनी यंत्रणाएँ झेल रही है वह अपनी ससुराल में, रीता अगर ये खत तुम पढ़ोगी तो पागल हो जाओगी।

हाँ, तो, वह पहला पत्र, रीता मुझे अच्छी तरह याद है, भैया ने बिना खोले बिना देखे बड़ी"....यहाँ आकर माधुरी थोड़ा रुक गई थी। शायद उसके अन्तर में वेदना प्रबल थी, "बड़ी बेरहमी से फाड़ दिया रीता! चिन्दियों में। और उसका एक भी पुरजा मुझे नहीं मिला।" माधुरी की आँखें सजल हो आयी थीं, "रीता। मुझे नरेन भैया की वह तनी हुई मुद्रा जब भी याद आती है, मैं आज भी डर के मारे थर-थर काँपने लगती हूँ। क्या भयावह दृढ़ता थी उनकी आँखों में उस दिन, रीता अगर तू देखती तो...। मीना अगर उस वक्त सामने होती तो जरूर विदेह हो जाती।"

माधुरी थोड़ी देर के लिए रुक गई थी। कहते-कहते आ गए पसीने की बूँदें उसके माथे पर साफ-साफ झलक रही थीं और रीता तो जैसे काठ बनी बैठी थी।

"उसके बाद मैंने क्या किया रीता, एक भी लैटर सीधे-सीधे उनके हाथों में नहीं पड़ने दिया। जो भी मीना का पत्र होता मैं उसे रोक लेती। फाड़-कर चिट्ठी निकाल लेती और लिफाफे में एक सादा कागज डालकर लिफाफा गोंद से चिपका देती। तुम ताज्जुब करोगी रीता। इस तरह से करीब पचास-साठ लिफाफे भैया बगैर देखे फाड़ते रहे और मैं उन्हें ऐसा करते खुद इन्हीं आँखों से देखती रही। बाद में भैया नौकरी की वजह से इतना परेशान रहने लगे कि मैंने लिफाफा भी देना बन्द कर दिया। और तब तो पिछले दिनों मैंने ही मीना को एक पत्र लिखा था, उसके लेटर आना बन्द हो गए हैं। इस स्थिति को भी मीना कैसे भोग रही होगी रीता क्या तुम आसानी से सोच सकती हो बिना डिस्टर्ब्ड हुए?"

"तुमने तो मेरे मन में बहुत सारा दर्द भर दिया माधुरी!"

"नहीं रीता यह सब कुछ भी नहीं है। भैया के मन में जितना दर्द समाया है, उसे हम और तुम मिलकर भी नहीं समेट सकतीं।" माधुरी ने फाइल को एक झटके से बन्द करते हुए कहा, "जरा दरवाजा खोलकर नीचे मां से पूछो तो, भैया आ तो नहीं गए। मैं तो सिर्फ इतना जानती हूँ रीता कि अगर यह फाइल भैया ने देख ली, तो वे मुझे जिन्दगी भर कभी

माफ नहीं करेंगे और अभी, इसी वक्त, यह घर, यह शहर छोड़ देंगे।"

"मधू ! तूने तो मुझे डरा दिया ! अच्छा छोड़ो। अगर आ भी जायें तो हम लोग दरवाजा नहीं खोलेंगे। बस। तुम सुनाती जाओ।"

सामने की दीवार की स्थिरता ने माधुरी को हिम्मत दी कि वह और कुछ आगे कह सके।

"और यह टीन का डिब्बा देख रही हो रीता !" माधुरी ने डिब्बे का ढक्कन खोल दिया। कागज के छोटे-छोटे बेलौस टुकड़े ढक्कन खुलने के बाद उस डिब्बे में कुलबुलाने लगे थे। रीता ने झाँक कर डिब्बे में देखा और फिर माधुरी की ओर मुंह कर लिया।

"ये टुकड़े भी मैंने इकट्ठे किये हैं रीता ! पिछले दो साल से भैया की हालत ज्यादा खराब रही है। यूनिवर्सिटी छोड़ देने के बाद भैया दिन भर उदास और खोए-खोए से रहते। जब नौकरी के चक्करों में आ गए तो रीता मुझे पता नहीं भैया का 'दिन' किस तरह बीता करता है; अल-बत्ता रात को सोने से पहले वे सरिता को एक चिट्ठी जरूर लिखते हैं और फिर पागलों की तरह उस चिट्ठी को एक बार पढ़कर दाँतों-नाखूनों से बुरी तरह फाड़ देते हैं। कई बार ऐसा करते मैंने उन्हें छुपकर देखा है। शुरू-शुरू में तो मुझे काफी डर लगता था लेकिन बाद में यह मेरे लिए भी सामान्य हो कर रह गया, सिर्फ एक टीस घर कर गई हृदय में।

सुबह भैया के जागने से पहले मैं चारपाई के आस-पास बिखरे इन बेतरतीब टुकड़ों को सँवारती। कई बार मैंने जोड़-जोड़कर पढ़ना भी चाहा लेकिन जो कुछ जोड़ने पर बनता था लाख सर मारने पर भी मेरी समझ में कुछ नहीं आता था। पता नहीं किस भाषा में लिखते थे भैया ? यह उनकी दिमागी विकृति के अलावा और क्या हो सकता है रीता ? उन्हें कोई देव भाषा भी आती है, मुझे विश्वास नहीं।

तभी से मैं भैया के लिये ज्यादा परेशान रहने लगी हूँ और रीता, यही से भाभी की डाँट फटकार मुझपर दुगनी हो गई। बड़े भैया ने आज तक न तो भाभी से एक शब्द भी कहा और न ही कभी यह जानने की कोशिश की

कि नरेन का क्या हो रहा है ? माँ अगर बाबूजी को न देखें तो उन्हें संभालने वाला कोई नहीं, ले देकर मैं ही अकेली रह गई हूँ नरेन भैया की देख-भाल करने के लिए। लेकिन उनकी इस रोज-रोज की बीमारी ने मुझे ज्यादा ही तंग कर दिया था; एक दिन जाकर मैं सरिता से मिली थी। वे भैया के साथ-साथ ही पढ़ती थीं और भैया के प्रोफेसर की लड़की हैं। रीता, किसी भी तरह से भई मैं तो सरिता को दोषी ठहरा नहीं पाती। तुम अगर रुको दो एक दिन तो मिलाऊँगी तुम्हें सरिता से। खुद देखना कि कितनी अच्छी लड़की है। फर्स्ट पोजीशन आई है फाइनल इयर में भैया के साथ, लेकिन जब उसने यह टीन का डिब्बा देखा था, सच मान, उसकी आँखों में भी आँसू आ गए थे। तुम्हें पता है रीता, भैया की उसी साल सैकिण्ड पोजीशन रह गई थी और मैं समझती हूँ इसी एक गम ने भैया को बदल डाला। अब उन्हें हर वक्त यही लगता रहता है कि वे एक पिटे हुए इंसान हैं और अब वे किसी काम के नहीं रह गए हैं। तुझे कैसा लगता है रीता कि इतना काबिल आदमी और दो साल से बेकार ? मुझे तो लगता है कि भैया का पागलपन, उनके दिमाग पर छाया हुआ कोहरा शायद एक पल को भी दूर नहीं होता, उस वक्त भी नहीं जब वे कहीं नौकरी के लिए इण्टरव्यू देने गए होते हैं। मैंने बहुत कोशिश की भैया कभी तो सामान्य रहा करें, लेकिन जो कुछ भी है सो तुम देख ही रही हो रीता।

एक खतरा और है रीता जो मुझे कभी-कभी अधिक विचलित कर देता है। तुम्हें याद होगा शायद, जब हम छोटे-छोटे थे तब भी नरेन भैया एक विचित्र प्रकार की दृढ़ता के एकमात्र अधिकारी थे। हममें से कोई अगर पुराने अखबार को कापी के ऊपर इस लिहाज से लपेटना चाहता कि कापी का कवर साल भर उस अखबार के रद्दी टुकड़े के पीछे सुरक्षित रहे तो नरेन भैया इतना डाँटते थे कि कभी-कभी तो मेरे भी आँसू निकल आते थे। रद्दी अखबार का उपयोग और हो ही क्या सकता था ? लेकिन भैया सबसे पहले उपयोग शब्द की धुनाई करते थे और बाद में यह साबित करते थे कि अखबार या कोई चीज कभी रद्दी नहीं होती।

उपयोग के आधार पर चीजों को रद्दी घोषित करने वाली प्रवृत्ति को वे बेहद बुरा मानते थे। यही प्रवृत्ति आदमी में छोटी-छोटी चीजों से शुरू होती है और एक दिन वह आदमियों को भी इसी प्रवृत्ति का अनजाने-जाने में शिकार बना डालता है। जब भी कोई अखबार का रद्दी टुकड़ा फाड़कर लापरवाही से इधर-उधर फेंकता था, नरेन भैया को लगता था कि किसी बेबस इंसान के अनुपयोगी होते ही उसे मार डाला गया है जब कि वह अभी और जीना चाहता था।

सब चीजों के अर्थ थे भैया के पास। लेकिन रीता! अब मुझे लगने लगा है कि कहीं कोई बहुत बड़ी गड़बड़ी हो गई है और बहुत सी चीजों के अर्थ भैया के हाथ से फिसल गए हैं। मीना के लिखे पत्रों और सरिता को लिखी चिट्ठियों को इतनी बेरहमी से फाड़ डालने का क्या मतलब हो सकता है रीता? किस चीज का अर्थ काटना या फाड़ना हो जा सकता है भला? फिर सरिता का मामला तो····

मुझे सरिता से एक ही शिकायत है रीता। मेरा तो माथा घूम गया सोचते-सोचते लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि नरेन और सरिता के बीच कौन सा न भरा जा सकने वाला गैप आ गया है कि····

जब मैंने सरिता से कहा था कि वे दोनों हमेशा के लिए एक हो जाएँ, क्या यह बहुत ज्यादा गलत होगा? जानती हो रीता, सरिता ने क्या कहा था?

पहले तो वह बहुत देर तक चुपचाप यूँ ही बैठी रही थी। शायद मेरे प्रश्न पर जरूरत से ज्यादा गहराई से सोच रही थी सरिता। बाद में बड़े पीड़ा युक्त स्वर में बोली थी, "माधुरी! अब तो यह नामुमकिन है। हम दोनों एक दूसरे को साथ-साथ रहकर चाह चुके। अब हम अलग-अलग रह कर ही एक दूसरे को चाह सकेंगे।····तुम नरेन का खयाल रखना जब तक उनकी शादी न हो जाय। मैं जानती हूँ माधुरी, इतना बड़ा काम सौंपने वाली तुम्हारी अब कोई नहीं हूँ मैं।" और इसके बाद फिर मौन हो गई

थी सरिता। इतनी मौन, कि काफी देर तक तो छेड़ने की मेरी हिम्मत नहीं हुई।

मैंने उससे लाख पूछा रीता, कि आखिर ऐसी क्या बात हो गई है कि वे साथ-साथ नहीं रह सकते और अगर साथ-साथ रहें भी तो एक दूसरे को प्यार नहीं कर सकते, ठीक उसी तरह से, जैसे, वे एक दूसरे को प्यार करते रहे थे? लेकिन उसने नहीं बताया तो नहीं ही बताया। हर बार यही कहा उसने, "नहीं माधुरी नहीं। पूछो मत। मैं बता भी नहीं पाऊँगी। शायद तुम्हारे नरेन भैया भी कभी नहीं बता पाएँगे। बताना तो एक तरफ रहा माधुरी, हमें उसे खुद के अन्दर दुहराने तक में मौत से गुजरने तक की यंत्रणा का अहसास होता है। बता पाना अगर आसान होता तो माधुरी....।" उसके बाद वह चली गई, मेरे लिए एक पहेली छोड़कर। जाते वक्त भैया का खयाल रखने की बात कहना नहीं भूली थी सरिता।

और रीता, उसने भी ठीक ही कहा था। भैया ने मुझे सब कुछ बता दिया लेकिन वह पहेली मेरे लिये आज भी पहेली बनी हुई है। शायद भैया भी किसी को वह नहीं बता पाएँगे; शायद वे भी उसे दुहराने भर में ठीक वैसा ही अनुभव करते हों जैसा सरिता ने कहा था। लेकिन रीता इससे कोई समस्या हल थोड़े ही होती है। विश्वास नहीं आता रीता कि ऐसी भी कोई बात हो सकी होगी! अगर मैंने इन आँखों से कुछ न देखा होता और कोई और मुझे यह सब बताता तो रीता मैं खूब हँसती। ऐसा कोई दर्द, ऐसी कोई बात? जैसे संघर्षहीनता के बीच से अचानक ही कोई संघर्ष उठ खड़ा हो...."

पता नहीं माधुरी इतना सब कैसे कह गई थी लेकिन इस जगह आकर उससे आगे न बढ़ा गया और वह रीता के कन्धे से लगकर रोने लगी।

रीता भी काफी उदास हो गई थी और सब कुछ जानकर तो उसका, सगता था दिमाग ही बैठ गया था।....

"शाबाश मधु! तुम्हारे पास तेज दिमाग के अलावा सोचने-समझने

तथा सहने की शक्ति का अक्षय भण्डार है, मुझे आज पता लगा। खैर, घबराओ नहीं, बस अब समझ लो कि सब ठीक हो जाएगा। आज मुझे सोचने दो, कल तुम्हें बताऊँगी। वैसे, मेरा दिल कह रहा है····। अच्छा-अच्छा अब बस करो।" कहकर रीता ने माधुरी का चेहरा अपने हाथों में भर लिया।

१२

रात में रीता ने हर्ष को सारी बातें बता दीं; इस वायदे के साथ कि वह नरेन से इस बारे में कुछ नहीं कहेगा। सुनकर हर्ष भी काफी गंभीर हो गया।

"बड़ी विकट समस्या है ?" रीता ने कहा।

"हाँ।" हर्ष ने पड़े-पड़े जवाब दिया।

"मर्द को सुधारना।"

"तुम मजाक कर रही हो रीता, मुझे पता नहीं कैसा-कैसा महसूस हो रहा है अब।"

"अरे मजाक नहीं बाबा! जरा ध्यान से सोचो और मुझे भी सोचने दो।" कहकर रीता दूसरी ओर करवट ले गई।

काफी देर तक वे दोनों अलग-अलग सोचते रहे। फिर अचानक रीता के दिमाग में कोई स्कीम चढ़ गई।

"ऐसा करते हैं।"

"बोलो", हर्ष फौरन उसकी ओर मुड़ गया।

"हम लोग मसूरी का प्रोग्राम बनाते हैं और तुम किसी तरह नरेन भैया को साथ चलने के लिए राजी कर लो। देखो पन्द्रह दिन में ही कुछ न कुछ हो जाएगा।" रीता ने बड़े विश्वास के साथ कहा, "और देहरादून से ऊषा को भी साथ ले लेते हैं। तुम समझ रहे हो न?"

"ठहरो-ठहरो। अब मुझे सोचने दो।"

"लो भई सोचो। अरे इतने में सोचने की कौन सी बात है?" रीता थोड़ी चिढ़ गई थी।

"हैं, तभी तो कह रहा हूँ।"

"क्या?""ऊषा के लिये तो तुम कहते हो, बहुत पहले से तुमने नरेन को चुन रक्खा है!"

"वही तो। अब मैं सोच रहा हूँ कि नरेन के लिये ऊषा ठीक रहेगी या नहीं।"

"ऊषा पर तुम्हें भरोसा नहीं?"

"वह बात नहीं रीता। ऊषा मेरी बुआ की लड़की भले है, मैं उसे सगी बहन सा जानता हूँ। दरअसल दिक्कत नरेन को लेकर है। अब वह बहुत ज्यादा काम्पलीकेटेड हो गया है। विचित्र सा। ऊषा के लिए भी इनकार कर दे तो कोई बड़ी बात नहीं। फिर चिन्ता तो यह भी है कि ऊषा उसे संभाल भी पाएगी या""।"

"बस! बोल गए न। अरे तुमने हम लोगों को समझ क्या रक्खा है? रही नरेन के इनकार करने की बात सो वह भी तुम मुझ पर छोड़ दो। लड़कियों ने ही उन्हें ऐसा कर दिया है, लड़कियाँ ही उन्हें 'चंगा' कर देंगी।""

"वाह! इतना कुछ समझती हो अपने आपको?"

"और नहीं तो क्या ? बेवकूफ हूँ ?"

"नहीं ! कतई नहीं । तुम तो बहुत समझदार हो और मुझे फख्र है कि मुझे एक समझदार बीवी मिली है ।" कहकर हर्ष ने रीता को अपनी और खींच लिया ।

"शुक्रिया अदा करो, नरेन भैया का ।"

"अरे बाबा शुक्रिया, शुक्रिया । सौ बार शुक्रिया । उसका शुक्रिया तो मैं जिन्दगी भर अदा करता रहूँगा । पता नहीं वह किन लड़कियों के बीच फँस गया ? नरेन जैसे दोस्त और तो हैं नहीं दुनियां में । कोई नरेन उसका भी दोस्त होता तो वह भी जिस लड़की को चाहता होता, उसकी हो गई होती । कोई झमेला ही नहीं था ।" कहकर हर्ष ने रीता की पलकों पर होंठ रख दिए । अपने हाथों से वह रीता को गालों, तथा कान के नीचे सहलाने लगा ।''''

"ऊँह" रीता ने हर्ष को हौले से परे कर दिया, "अब नहीं । और फिर हम मसूरी तो चल ही रहे हैं ।"

"ठीक है ।" हर्ष भी उधर को करवट ले गया । लेकिन जैसे ही उसे पता लगा कि रीता उससे मजाक कर रही है, वह फौरन पलट गया । "वाह रीता !" और इस बार उसने रीता को खूब कसकर पकड़ा ।

१३

रज्जन रात भर करवट बदलता रहा, उसे नींद नहीं आ रही थी। जब से कमला घर छोड़कर चली गई है उसका घर फिर से बरबाद हो गया है। कोई चिराग जलाने वाला नहीं है घर में, चूल्हा जलाने की तो बात ही अलग है। कई दिनों से वह भूखे पेट सिर्फ़ शराब पिए नशे में धुत्त लौटता है और बेसुध हो चारपाई पर पड़ रहता है, अँधेरे में ही। भूख की वजह से नींद नहीं आती है, तो भी पड़ा रहता है। उसे लगता है जैसे चारपाई पर पड़ रहने के बाद अब उठ जाना उसका काम नहीं है और उसमें इतनी सामर्थ्य भर भी नहीं है।

सवेरे जब नशा उतरता है तो वह सीधा फैक्टरी की ओर गिरते-पड़ते चल देता है। वहाँ पास की एक हट्टी पर कुछ खा पी लेता है और

फिर फैक्टरी में घुस जाता है तो बस शाम को ही निकलता है। कभी-कभी वह सवेरे भी कुछ नहीं खाता लेकिन शाम को जरूर वह रोज ही फैक्टरी से सीधा दारूखाने चला जाता है।

रास्ते में देखने वाले देखते हैं लेकिन उसे कोई छेड़ता नहीं। लोग देखते हैं और उस पर तरस खाते हैं। कितना अच्छा आदमी था रज्जन और किस तरह तबाह हुआ जा रहा है! लोग सोचते हैं लेकिन कोई उसके लिए कुछ करता नहीं।

"मत छुओ मुझे सालो। मुझे किसी की जरूरत नहीं।" रज्जन अपने आप ही बड़बड़ाता है। तभी उसे आज की सुबह याद आती है, "साले हट्टी वाले ने खाना खिलाने से इनकार कर दिया। उस साले को कैसे खबर लग गई कि अपनी फैक्टरी ठप्प होने वाली है?""और मुझे कहीं दूसरी जगह काम नहीं मिलेगा?""अबे साले तुझे पैसा ही तो चाहिए न? अपना ले लेना, पैसे का गुलाम साला।" रज्जन मन ही मन सोचता है लेकिन अब उससे भूख बर्दाश्त नहीं हो रही थी। वह बुरी तरह छटपटाने लगा था, "घर में तो एक चुल्लू पानी भी न होगा रज्जन, क्या करेगा?" वह अपने आप से ही कहता है और फिर चारपाई पर पट हो जाता है।

"साली दुनियाँ है या कमीने लोगों का जमघट?" रज्जन ने चाहा कि एक जोर की कै कर दे। सारा कुछ उँडेल दे इस दुनियाँ के सामने और यह दुनियाँ उसे चाट ले। "बेईमान, दगाबाज। चोट्टे""बेवफा" उसके मुँह से झाग की तरह गालियाँ उठ रही थीं।

"तू साले कब से खानदानी हो गया था रे? बेटी चो""देखते ही अन्दर सरक गया और छोकरों से कह गया किसी को भी उधार चाय मत देना! देखता हूँ साले तुझे। अरे दुनियाँ का पैसा मार के अब चाय की दूकान खोली है तो एकदम से बड़ा आदमी बन गया।""कलाकारी दिखाता है। बनता है मादरचो""लिखक्कड़। कविताई करते हैं! साले, वे ही तो हो जो धक्के मार-मार के उस अखबार के दफ्तर से बाहर फिकवा दिए गए थे और सरऊ तब पैसे-पैसे को मोहताज कभी इसके आगे

तो कभी उसके आगे हाथ फैलाते फिरते थे। फँस गया था वह विचारा भोला-भाला शंकर और ऐंठ लिये थे उससे तीन चार सौ, नई किताब निकालेंगे और बेटा तुम्हें अपनी जमात में कर लेंगे। देखते जाओ, फटाफट तुम कहाँ से कहाँ पहुँचते हो।""अरे साले, उसका कुछ नहीं बिगड़ा लेकिन तेरी नीयत तो उसने जान ही ली। मत कर शुक्रिया बेटा कि उसी के पैसे से तेरी चाय की दूकान चल रही है और उसकी दी हुई उतरन से अब साले कप-प्लेट और मेज-कुर्सी साफ करवाते हो। पहनते तो बड़े ठाठ से थे जैसे कि माँ के यार ने बनवा के दिये हों। उसी की बदौलत आज साले इस इलाके में टिके हुए हो मजे से, नहीं तो दिन भर में चालीस पान खाने से पहले सौ जूते खाने पड़ते तो सब सुर्ती का मजा गोल हो जाता। कमीना कहीं का। रण्डियों की तरह पान से होंठ रंगे रहेगा और हर वक्त खिखिखी खिखखी""व्वा ह""

रज्जन को वाकई एक कै हो गई थी। उसकी आँखों और नाक में शराब चढ़ आई थी। बेहोशी की हालत में वह बड़बड़ाता रहा, "पर सालो मैं बेवफा नहीं। मैं कमीना नहीं। कमीनी कोई चीज थी अगर मेरे पास तो थी साली बेवफा औरत। वो भी अपने यारों के पास चली गई। जाओ सब""मरो सालो""मेरा क्या उखाड़ोगे? मैं एक-एक को रगड़ दूँगा। चली जाय फैक्टरी भाड़ में। भाड़ में जाए नौकरी। भाड़ में जाए दुनियाँ। मरूँगा तो मर जाऊँगा। अरे सालो कितना कर्जा है तुम्हारा मुझ पर जो रौब मारने लगे? खाना नहीं, चाय नहीं! दारू नहीं!! हत्या ही न कर दो सब मिल के। मरते-मरते भी सब कर्जा चुका दूँगा। ढाई हजार तो फण्ड जमा है मेरा फैक्टरी में""

१४

"पैसों की परवाह मत कीजिए माता जी, नरेन को जाने दीजिए। कैसे-कैसे तो उसे मना पाया हूँ साथ चलने के लिए। कपड़ों और खर्च की भी आप फिकर न करें, मैं भी तो आपका बेटा हूँ।" हर्ष ने बाबू जी के कमरे में आकर नरेन की माता जी को सब कुछ बता देना ठीक समझा, "और फिर माता जी कुछ दिनों के लिए उसका यहाँ से जाना जरूरी है। थोड़ा हवा-पानी बदलेगा तो कुछ हालत में फर्क आएगा ही। यहाँ रहते-रहते तो जल्दी ही उसका दम घुटने लगेगा।" हर्ष लगातार बोलता रहा, "और वैसे तो हम लोग साथ-साथ ही रहेंगे माता जी। नरेन मेरा दोस्त है कि मैं ही हूँ। ऊषा मेरी बहिन है। इस नाते कुछ भी करने का हक है मुझे। जैसे ही कोई बात बनेगी, आप विश्वास रखिए माता जी, सबसे

पहले मैं आपको खबर दूंगा।''''अब बस ठीक ही समझो सब।''''' कह-कर हर्ष बाहर जाने लगा, ''और हां एक बात और है माता जी, जब तक मैं कोई खबर न दूं, आप इस बात को गोल ही रखिए, किसी को भी पता नहीं होना चाहिए इसका।'' हर्ष अब बाहर आ गया था।

फिर वह सीधा रीता के पास चला गया, ऊपर।

''रीता। मैंने माँ को बता दिया है। तुम माधुरी से भी कह देना कि जब तक हम कोई खबर न दें, बात फैले न। नरेन को तो इस बात का पता लगना ही नहीं चाहिए, नहीं तो सब चौपट हो जाएगा।''

''आप अपना काम कीजिए जनाब! मैं अपना काम कर लूंगी।'' रीता ने यूं ही हर्ष से कहा।

''ऐ रीता! ज्यादा बनोगी तो मैं''''','' हर्ष अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि छत पर माधुरी आ गई। वह बुरी तरह झेंप गया और नीचे उतरने लगा जैसे उसे कोई खदेड़ रहा हो। रीता और माधुरी हर्ष को नीचे उतरते देखती रहीं फिर वे दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

''देखा माधुरी!'' रीता ने कहा।

''हां रीता। अब लगता है तुम्हारी तारीफ करनी ही पड़ेगी। शुरु-आत काफी अच्छी है।'' माधुरी ने उत्तर दिया।

''अरे शुरुआत ही नहीं, बस तुम देखती जाओ। सब काम इतनी ही आसानी से हो जाएंगे! बस जरा धीरज रखो और''''!''

''मुझे क्या चाहिए रीता, हर्ष और नरेन दोनों भैया तुम्हारे सुपुर्द कर दिए हैं।''

''और जो तुम्हें चाहिए मधु वह भी तुम्हें मिलेगा। लेकिन जरा और सब्र करो। तुम्हारे केस की सुनवाई बाद में होगी, अभी जरा इसे'''''''

''इसे ही सुलझाओ रीता, बाकी कोई मुसीबत नहीं है।'' फिर हँसते हुए लेकिन विश्वासपूर्ण शब्दों में बोली माधुरी, ''मेरा कोई केस नहीं है भाभी।''

''अच्छा भाभी!'' रीता माधुरी के गले जा लगी।

चुहल से फारिग होकर माधुरी रीता की तैयारी में हाथ बंटाने लगी। उसके मन में एक अनजानी खुशी गुनगुना रही थी।

१५

एक काली झील आसमान में तिर आयी है और हवा में उफन रही है। तपती हुई तलहटी में खड़ा नरेन ऊपर को आँखें किए उस झील के काले धुएँ के बीच तैरते कई लोगों के चेहरे धुंध के बावजूद एकाएक शिकन के साथ स्पष्ट देख रहा है। वे सब अस्थिर छटपटाहट के बीच भयंकर रूप से तिलमिला रहे हैं। सारे के सारे। बेचैनी से, जीने की सजा सी काटते हुए।

धुएँ की एक जबरदस्त लहर नरेन की आँखों में धँस गई और उसके मस्तिष्क में चढ़ गई। काली झील के बीचोंबीच तैरता एक चेहरा उसके काफी नजदीक आकर मँडराने लग गया था।

इस चेहरे पर आँखों की जगह सिर्फ़ छोटे-छोटे गड्ढे थे, सब कुछ

जिनमें डूब गया था और अब वे किसी पुराने बर्बाद कुएँ की तरह बन्द पड़े थे। पहले इन गढ़ों में कुछ न कुछ हमेशा जगमगाता रहता था लेकिन एक दिन....। एक दिन अँधेरे का एक बहुत बड़ा तूफ़ान आया और उसका एक बहुत बड़ा थक्का आँखों में अपने समूचे पैनेपन के साथ बैठ गया और एक पुरानी इमारत खंडहर हो गई।

इस चेहरे पर सफेद दाढ़ी बड़ी बेतरतीबी से चिपकी हुई है मानो हर बार कुछ कबूतर चेहरे पर उतरते और चेहरे का कुछ भाग नोच कर ले जाने के बदले अपने सफेद बुर्राक परों का चूरा वहीं छोड़ जाते रहे।

नाक के ऊपर माथे के बीचों-बीच एक बहुत बड़ा गूमड़ भी ताजगी लिये हुए है। किसी उजाड़ चरागाह के बीच ठूंठ बन कर खड़े किसी उदास चरवाहे की तरह।

अपने लहूलुहान हाथों के बिल्कुल नाकाम हो जाने से पहले इस चेहरे ने एक बड़ा अजीब काम किया; अपने सर के सारे बाल चींथ डाले।

इस चेहरे के ठीक पीछे एक जनाना चेहरा झाँकने लगा है। गोल, गोल। घूमता हुआ। घूंघट निकालने से लेकर उसके छलनी-छलनी हो जाने तक की विष-यात्रा को पार कर सहज ही बुढ़ा गया चेहरा। इस चेहरे पर कभी गुलाब उगे थे। अब सिर्फ बर्फ है। जमी हुई प्यास की तरह। गलती हुई। टुकड़ों में।

और बर्फ के बीच असली आकृति सिकुड़ गई है इस चेहरे की। लड़ने का पूरा जोश रोने में पारंगत कर गया है इस चेहरे को और यह चेहरा हर वक्त पहले वाले चेहरे से चिपका रहता है। भूल चुका है सब कुछ यह चेहरा। याद नहीं कि खुद के पैदा किये दो गुलाब और एक गुलदाऊदी अभी भी आँगन में पड़े हैं। सिर्फ अपनी तार-तार हुई जा रही धोती के गीलेपन को सुखाने के लिए आँगन में लगाई गई झरबेरी के कांटेदार सहारे भर को सराहने के लिए मजबूर है यह चेहरा। कोई भी आवाज इसके कानों से सिर्फ़ टकराती है और आँखों में इसने भी अँधेरे को समो रखा है, पहले वाले चेहरे की तरह। दोनों चेहरों में अँधेरे का बहुत बड़ा रिश्ता है।

घूँसे की तरह दनदनाता एक मर्द का सख्त चेहरा। जिद्दी काठ के दरवाजे की तरह। पूरी झील के कालेपन को पी जाने की कोशिश की थी इस चेहरे ने और अब यह चेहरा ही इतना काला हो गया है कि इस धुप-धुएँ के बीच काले चाँद की तरह चमकता है।

शाहजहाँ से होड़ लेने गया था यह, ताजमहल के करीब। और वहाँ इसे काली चाँदनी मिली। इसका चाँद सा चेहरा उसके साथ काला हो गया और फिर काली चाँदनी दंश मारने लगी। दंश मारने की आदत की पहली खिलाफत में ही यह चेहरा काठ हो गया और अब इसे झील के ऊपर नीचे तथा बाहर या अन्दर की कोई खबर नहीं। कोई भी चीज इसके माथे पर अब लहर नहीं पैदा करती। गूँगा भी हो गया है शायद यह।

कानों के भीतर से होता हुआ एक ताला इसकी जुबान को फोड़ गया है, और इसके दिमाग में एक फोड़ा पक रहा है। झील में तैरते लोगों को उसका मवाद चाहिए।

अभी-अभी एक शहनाई गूँजी थी और उसकी गूँज नरेन के कानों में घुल गई।

गुलदाऊदी के नन्हें से पौधे पर एक चेहरा टंगा हुआ है, बेबस, निरीह। काली झील के निवासियों के तईं इसने अपनी हर एक प्यारी चीज कुर्बान कर दी है। समय से काफी पहले ही बुर्जुगियत इसके माथे में धँस गई है और यह इस झील में एक रेत के महल बन जाने का इन्तजार कर रहा है। यह चेहरा पहले-पहल सभी चेहरों के बीच बारी-बारी से चहलकदमी करने उतरता है और आँगन की झरबेरी से गुलदाऊदी के पेड़ का रिश्ता दरहम बरहम रखता है। कभी भी झरबेरी के काँटों को अपने ऊपर झेलने से इनकार नहीं किया इस चेहरे ने, इसकी कोशिश रही है कि काँटों की चुभन और किसी चेहरे तक गुहार न कर पाए। कम से कम यह काँटों के दंशन को हमेशा-हमेशा के लिए चूस ले।

उखड़ा-उखड़ा सा एक और ठण्डा चेहरा सामने आ गया है, दशकों पहले जो इस काली झील में एक चट्टान गिर गई थी। काली झील में आने

से पहले यह चेहरा कई वर्षों तक अपने पापा के फ्रिज में रखा रहा था। वहाँ से निकलते-निकलते यह चेहरा खुद ही एक फ्रिज हो गया था।…

और यह चेहरा ? तुरन्त ही खोली गई बोतल में से गिलास में उड़ेली जाती शराब की तरह। सर पर बालों के छाते की जगह फ्रायड की कोई मोटी सी किताब रखी है और यह माथे पर छड़ी ? यह छड़ी कभी नरेन को भी छूती थी और कभी-कभी इस चेहरे और नरेन के बीच सिर्फ़ यही छड़ी होती थी।…

यह दो चेहरे एक साथ आए। काली झील के अन्दर भी मुस्कुरा सकने की ऊर्जा से लैस। ये उसे भी अपना हमसफ़र बनाना चाहते हैं। लेकिन ये दोनों चेहरे डाक्टर की दी हुई टेब्लेट्स क्यों बनते जा रहे हैं ?

और यह काली झील में क्या हो गया है ? सब चेहरे एक दूसरे का पीछा सा कर रहे हैं और गोल-गोल चक्कर काट रहे हैं।…

और ये कौन से चेहरे हैं जो सबसे ज्यादा तेज-तेज भागे जा रहे हैं ? नरेन उन्हें नहीं पहिचान पा रहा है। और इन चेहरों के रंग भी बड़ी तेजी से बदलते जा रहे हैं।

अरे ! अरे !!…काली झील पूरी की पूरी क्यों हिलने लगी ? और यह उलट जाएगी ?

नरेन ने झट से अपनी आँखें खोल दीं। हर्ष उसके ऊपर झुका हुआ था। "उठो नरेन ! उतरें अब। देहरादून आ गया।"

"इधर कहाँ लिए जा रहे हो हर्ष" नरेन को नींद अभी पूरी तरह उचकी नहीं थी। वैसे भी वह बहुत दिनों से नहीं सो पाया था, करीब पिछले दो साल से। जरा सी देर को फ़ुर्सत मिली थी और वह ट्रेन के कम्पार्टमेन्ट में पता नहीं क्या सोचता-सोचता न जाने कब सो गया था। फिर जो सपना देखा उसने वह उसे और शिथिल कर गया था। देहरादून

में रात के दस बजे तो काफी सर्दी हो जाती है। ट्रेन से उतरने के बाद पता नहीं नरेन को वे कहाँ लिये चले जा रहे थे।

"घर !" शायद हर्ष मुस्कुराया भी था। अँधेरा होने की वजह से नरेन उसे देख तो नहीं सका अच्छी तरह अलबत्ता चौंक कर देखने के बाद उसे हर्ष की चाल से लग रहा था जैसे वह किसी सरप्राइज के चक्कर में हो।

"पहले यार ! जब हम लोगों का टूर आया था इधर, तुझे याद तो है न हर्ष, हम लोग जैन धर्मशाला में टिके थे। कमरा नं० ४ में।"

"यह कोई टूर नहीं है बड़े भाई। यहाँ रुकने के लिए मेरा घर भी है।"

"तेरा घर है ?" नरेन ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"अबे हद हो गई यार," हर्ष ने थोड़ा चिढ़ते हुए उसे पकड़ा, "हमने तुझे बताया था कि नहीं, हमारी बुआ यहीं आकर रहने लगी है। वे यहाँ के डिग्री कालेज में प्रोफेसर हैं।"

नरेन को कुछ याद आया। हाँ, बताया तो था हर्ष ने। और ट्रेन में तो रीता भी इन देहरादून वालों के बारे में बातें करती आयी थी। सचमुच हद तो हो गई। इतनी सी बात याद नहीं रख सकता अब वह ?····

पता नहीं किधर-किधर को मुड़े वे सब और कितनी देर चले, हर्ष ने उसे रुकने का इशारा किया था तो वह रुक गया था।

हर्ष ने आगे बढ़कर सामने वाले घर का दरवाजा खटखटाया और नरेन किसी जादुई गुफा के खुलने की प्रतीक्षा के रोमांच से भर उठा। वह देख रहा था कि हर्ष ने अपना ठन्ड से काँपता हाथ फिर से किवाड़ों पर मारा था और अब उसके दस्ताने पहिने हाथ लगातार दरवाजे को एक मामूली सी चोट पहुँचा रहे थे।

थोड़ी देर के बाद दरवाजा खुला और हर्ष के बिल्कुल समीप एक भर-पूर आकृति आकर खड़ी हो गयी।

"ऊषा। हम लोग हैं। कब से दरवाजा पिटपिटा रहा हूँ।" हर्ष ने बड़ी जल्दी-जल्दी कहा लेकिन फिर भी उसके शब्द सर्दिया गए थे।

"भैया ? नमस्ते।""आओ""आ जाओ सब लोग", कहती हुई वह आकृति अन्दर हो गई।

फिर एक-एक करके वे अन्दर प्रविष्ट हुए। नरेन ने कुली से सामान खुद ले लिया था। उसे पैसे देने के बाद वह भी अन्दर घुसा।

"और भी कोई है ?" वह आकृति अभी तक दरवाजे के पास ही थी। अब उसका हाथ दरवाजे की सांकल पर चला गया था। नरेन के नकार में सिर हिलाते ही उसने खट से कुन्डी चढ़ा दी। एक हल्की ध्वनि को बड़ी तीव्रता से महसूस किया नरेन ने और फिर उस छाया के साथ कुल सामान को घसीटते हुए वह अन्दर की ओर बढ़ा।

"कुछ छोड़ दीजिए। मैं ले लेती हूँ।" उस आकृति से एक गुनगुनाहट सी उभरी।

"नहीं, नहीं।" कहकर नरेन ने पूरे सामान पर अपनी पकड़ और तेज कर दी।

"क्या आदमी है !" उसे हर्ष पर गुस्सा आ रहा था, "घर आ गया तो फट से अन्दर घुस गए। ख्याल भी नहीं कि कोई और भी आया है साथ में ! और कि सामान भी एक आदमी के मुकाबिले ज्यादा है।"

लेकिन वह घसीटता हुआ पूरा सामान खुद ही अन्दर ले आया। पता नहीं क्यों उसे एक विचित्र घबराहट का अनुभव चुपके-चुपके हो रहा था। वह जल्दी से एकदम अकेला होना चाहता था।

"नरेन ! मैं यहाँ हूँ।" एक कमरे में से रीता के हँसने की आवाज आई थी और फिर हर्ष का स्वर सुनाई दिया था।

"अच्छा।" नरेन भी उसी कमरे में घुस लिया।

अन्दर एक छाया और थी, कुछ-कुछ उसकी माँ की छाया से मिलती-जुलती झुकी हुई सी, सौम्य सी। लेकिन कमरे में लगभग अँधेरा था। एक मोमबत्ती पता नहीं कब से जल रही थी और अब वह अपने आखिरी अंक का चीत्कारपूर्ण परिमंचन कर रही थी। नरेन को लगा कि वह मोमबत्ती उसके अन्दर गली है और अब थोड़ी ही देर में समचा अँधेरा फैलने

वाला है ।

"नरेन हो क्या ?" उस वृद्ध छाया ने पूछा ।

"हाँ बुआ जी । प्रणाम ।" नरेन ने उत्तर दिया ।

"जीते रहो बेटा । अच्छी तरह से तो हो ।''''लेकिन तुम्हें तो कंप-कंपी छूट रही है । ऊषा, जरा अंगीठी गर्म कर दो । ये लोग काफी ठिठुर गए हैं, आज दिन में पानी भी तो क्या जोर का बरसा था कि बस देखते ही रहो ।''''और हाँ, एक मोमबत्ती और दे जाओ ऊषा । यह तो गई ।" हँसते हुए बुआ जी ने नरेन की ओर देखा, "बिजली भी आज शाम से ही गोल है इधर की,''''बड़ा कैसा लग रहा होगा ।"

"नहीं नहीं''''कभी-कभी चली ही जाती है बिजली," नरेन ने जल्दी से कहा, "बिजली जाने का रिवाज हमारे हिन्दुस्तान में काफी है ।"

"सो तो है ही खैर । अरे ऊषा ।"

"आ रही हूँ माँ ।" दूसरे कमरे से एक खीझ भरा स्वर उठा । लगता था जैसे वह कोई चीज ढूँढ रही थी और वह उसे नहीं मिल रही थी ।

१६

अब उसे लग रहा था कि जरूर कुछ देर लिये बदल गया था वह। मगर कैसे ? उसे खुद पर ही आश्चर्य हो रहा था। बल्कि अब तो अगर कोई और आकर कहे कि "नरेन ! तुम ट्रेन में सो गए थे भई" तो वह शायद न माने। सोया तो वह वर्षों से नहीं। पिछले दो साल से उसे नींद आ कहाँ रही है ? यहाँ भी·····उसकी छटपटाहट इस वजह से कतई नहीं है कि यह जगह दूसरी है, घर भी अजनबी है और घर वाले भी। अजनबी होने को तो अब उसके लिए सब अजनबी ही तो हैं। और इससे उसे अब फर्क ही कहाँ पड़ता है। पिछले दो साल में तो उसने किसी के भी बारे में कुछ खास तरीके का सोचना बिलकुल छोड़ दिया है। या कि अपने आप ही छूट गया है। नरेन को लगता है कि दोनों बातें एक ही हैं।

उसने बेचैनी के विचित्र क्षणों में एक करवट और बदल ली। ढीले होकर एक जोर की साँस ली और तब उसे महसूस हुआ कि अन्दर और बाहर कोई खास फर्क नहीं है। यहाँ कमरे में भी बाहर की तरह अँधेरा और ठंडक दोनों मौजूद हैं। तब वह चित्त हो गया।

अपनी ठंडी एड़ियों को रगड़ने के बावजूद अभी तक उसकी समझ में यह नहीं आया था कि पैरों के नीचे दबा हुआ कम्बल हर्ष का है या उसका चाला ही है, फटा, पुराना या फिर···

इसी सिलसिले में आगे सोचने की अपेक्षा उसने चाहा कि उसे एकदम से नींद आ जाए, या फिर चारपाई या कपड़ों में वहाँ खटमल पैदा हो जाएँ या मच्छरों की एक टुकड़ी वहाँ अँधेरे में आ जाए और वह उनसे जूझने में अपने आपको व्यस्त कर ले।

सुबह चाय लेकर हर्ष ने जब उसे दबोचा तब भी वह जगा हुआ था। कम्बल जरूर उसने अपने चारों ओर कसकर लपेट लिया था जिसे उसने अब अपने से अलग कर दिया था और चारपाई पर उठकर बैठ भी गया था। रात के बादल अब भी छाए हुए थे लेकिन सवेरे की रोशनी कमरे में घुस आई थी। नरेन ने रात को ही अन्दाजा लगा लिया था कि यह कम्बल न तो हर्ष का था और न उसी का। यह सेवा मेजबान की ही थी।

उसके लिये भी चाय लेकर ऊषा और रीता कमरे में आ गई थी।

"कहो भई, रात कैसी कटी?" हर्ष ने अपनी चाय सिप करते हुए पूछा।

"मजे से। लेकिन यार····मच्छरों तथा खटमलों का अभाव बुरी तरह से खटका।" नरेन ने भी चुटकी ली।

सब हँस पड़े। हँसते-हँसते ऊषा ने नरेन को गौर से देखा·

बोली—"क्या फर्क पड़ता है। मच्छरों और खटमलों के न होने से कौन से आप आराम से सोए ? आपकी आँखें बता रही हैं...."

"कि मैं रात भर जागा हूँ।....हूँ।" नरेन को लगा जैसे उसे चोरी करते हुए पकड़ लिया गया हो, "नहीं भई। कम्बल तान के आराम से सोया हूँ मैं तो। आँखों पर आप न जाइए, वे तो पता नहीं, क्या न बता दें आपको।" कहकर नरेन ने हँसना चाहा लेकिन हँस लेने के बाद उसे खुद महसूस हुआ कि उसकी हँसी सिर्फ़ खिस्स-खिस्स होकर रह गई थी और कि उसके साथ इस बार कोई और भी नहीं हँसा था।

नरेन ने उन लोगों के चेहरों को अलग-अलग करके देखना चाहा लेकिन उस वक्त यह संभव नहीं था। वे सब आपस में एक दूसरे को देखते रहे थे।

उसे महसूस हुआ कि एक पल को उन लोगों ने उसे इग्नोर सा कर दिया है और वह इन लोगों के बीच बेमतलब अकेला पड़ गया है। उसे सब के साथ-साथ अपने ऊपर भी काफ़ी गुस्सा आ गया लेकिन वह इस गुस्से को आसानी से दबा गया। फिर भी, उसकी रात भर जागने की वजह से लाल हुई आँखें और ज्यादा लाल हो गई थीं जैसे कोई काँच का टुकड़ा काफी गरम होने के बाद लाल हो जाता है और थोड़ी ही देर में बजाय पिघलने के चटख कर किरचों में बिखर जाता है।

एक घूंट में ही उसने अपनी चाय खत्म कर दी और तब उसने महसूस किया कि उसके मुंह का स्वाद बेहद-बेहद बदल गया है। लग रहा था जैसे कच्ची मूँगफलियों को छिलके समेत चबा लेने के तुरन्त बाद ही एक गिलास बर्फ की तरह ठन्डा पानी पी लिया हो उसने। उसका मुँह अपने आप कई कोणों पर पिचक गया।

उसे पता नहीं कब वे लोग बिना उससे जवाब की अपेक्षा किये, बातें करना शुरू कर चुके थे और कब तक करते रहे थे। उसे यह भी ध्यान नहीं था कि उसने कब दुबारा कम्बल उठाकर अपने ऊपर डाल लिया था और कब वह फिर से चारपाई पर पसर गया था।

"अरे यार ! तू तो फिर घुस गया । उठना नहीं है क्या ?" हर्ष ने नरेन से कहा था और शायद पहली ही बार में नरेन ने कोई उत्तर नहीं दिया था। जब हर्ष ने अपने आपको पूरा का पूरा उससे मुखातिब किया तो नरेन चौंका था और दुबारा पूछने पर बोला था—"नहीं यार ! अब जब तुम जान ही गए हो कि मैं रात में सो नहीं पाया, मुझे अपनी नींद पूरी करने दो। आराम करने से हालत बेहतर हो जाएगी; लेकिन मेरी वजह से तुम लोग अपना प्रोग्राम मत बदलो। मुझे आराम करने दो। इस वक्त तो, पता नहीं जी कैसा हो रहा है। लेकिन कोई चिन्ता की बात नहीं है।"...बदहवासी के से आलम में वह पता नहीं क्या-क्या बोले जा रहा था।

"अच्छा !" हर्ष ने उसकी बात सुन लेने के साथ-साथ उसे घूरना भी शुरू कर दिया था।

"हाँ-हाँ।...." और इसके बाद नरेन रुक गया था और उसकी आँखों में खुद के पागलपन का एहसास तैरने लगा था जैसे कोई बर्फ का नुकीला टुकड़ा हवा में तैरने लगे।

तब एकदम से नरेन ने अपने आपको ढीला छोड़ दिया। कुछ-कुछ उन्हीं लोगों की मरजी पर सा।

"अभी हम लोगों का कोई प्रोग्राम बना ही कहाँ है।....खैर तू आराम कर ले, देखेंगे तब।" कहकर हर्ष उठ गया था और खड़े होने के बाद उसने रीता तथा ऊषा को एक साथ देखा। यकायक हर्ष चौंक गया। ध्यान से देखा, दोनों के कन्धे एक ऊँचाई पर मिले हुए थे।

"और हाँ भाई। कोई चीज, कुछ जरूरत पड़े तो आवाज दे लेना। समझ गए न भाई साहब। यह मुझे आपसे जरूर कहना पड़ता है। आओ रीता।" जाते-जाते हर्ष एक तीर और छोड़ गया था। उसके जाने के बाद कप-बसी को समेट कर ऊषा तथा रीता भी वहाँ से खिसक ली थीं। जाने से पहले उन दोनों ने नरेन को भर नजर देखा था।

उनके जाते ही नरेन ने फुर्ती से अपने आपको कम्बल के नीचे छुपा

लिया। बाहर पानी की बूंदें यकायक तेज हो गई थीं और कंपकंपी की एक लहर अन्दर धँस आई थी।

शाम को हर्ष उसे जबरदस्ती खींच ले गया। दिन भर के बाद भी उसका मूड हल्का नहीं हो पाया था और इस वक्त भी घूमने-घामने की कोई तबियत नहीं हो रही थी, फिर भी कुछ सोचकर मना नहीं किया हर्ष को उसने।

राजपुर रोड से पल्टन बाजार और फिर वहाँ से दिग्विजय टाकीज की ओर जाकर बाईं ओर को मुड़ गया था हर्ष, साथ-साथ चलता रहा नरेन, बेमतलब सा।

हवा में अभी भी नमी थी और सड़कें एक हद तक गीली थीं। पानी नहीं बरस रहा था, लेकिन लगता था कभी भी बरसना शुरू हो सकता है। नरेन ने देखा, लोगबाग इसी वक्त काफी भागम-भाग में हैं, न किसी को खुद देख रहे हैं और न खुद ही महसूस कर रहे हैं कि कोई उन्हें देख रहा है। अपने आप के देखे जाने के एहसास को लेकर लड़कियाँ काफी लापरवाह सी दौड़ी चली जा रही थीं। देखकर नरेन को थोड़ी तसल्ली हुई और तब उसने एक चैन की सांस लेनी चाही।

"थक तो नहीं गए नरेन ?" नदी के पुल पर आकर हर्ष रुक गया था और नरेन को देख रहा था। फिर खुद ही पुल पर, रूमाल बिछाकर बैठ गया। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद नरेन भी बैठ गया। हालांकि उसकी तबियत बैठने की उस वक्त कतई नहीं हो रही थी। पता नहीं क्या था। चाह रहा था कि ऐसे में चलता ही चला जाए, यूँ ही, दूर खूब दूर, जहाँ उसकी जान पहिचान का कोई न हो। और जब थक जाए चलते-चलते, तो वहीं कहीं गुम हो जाए।....

लेकिन अब वह हर्ष के पास ही बैठ गया था, बिना बोले। अनमना-सा।

"यह नदी बह रही है नरेन," हर्ष ने अपने और नरेन के बीच आ गए मौन को तोड़ते हुए कहा।

"इसकी खास बात तुम्हें याद है कि नहीं? पहले जब आए थे, शायद''''शायद तब इसमें बिल्कुल पानी नहीं था। अभी है तो कुछ देर में बरसात खत्म हो जाने के बाद फिर से यह सूखी हो जाएगी। इतना ढेर सा पानी'''इतनी भरी-भरी सी दिखने वाली नदी।''''और थोड़ी ही देर में बिल्कुल सपाट। ट्रक भी इसमें दौड़ते चले जाएँ। अजीब रास्ता बन जाती है यह नदी। अभी हो तो हाथी भी बहता चला जाए और तब ट्रक''''। अच्छा, लगता है न अजीब?" एक रौ में बोलते चले जाने के बाद वह नरेन की ओर घूम गया। उसे बड़ी हैरानी हुई जब उसने देखा कि नरेन अभी तक यूँ ही गुमसुम सा बैठा है और काफी उदास! पता नहीं, उसकी बातें उसने सुनी भी थीं, या यूँ ही?

"तुम यार''''अच्छा कुछ पता है, मैंने अभी-अभी क्या कहा था?" नरेन मुड़ गया था हर्ष की ओर लेकिन उसके हाव-भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। हर्ष को लग रहा था कि वह खुद भी बड़ी अजीब मनः-स्थितियों में फँसता जा रहा है नरेन के साथ-साथ, और कि इस हालत में वह नरेन को चुप होकर एकटक देखता भर भी नहीं रह सकता। तब वह फिर से बोलने लगा था। उसका ख्याल था कि चुप होकर किसी स्थिति को झेलने की अपेक्षा कई बार उस क्षण बोलते हुए काफी हल्का हुआ जा सकता है। लेकिन उसे अन्दर ही अन्दर कहीं यह डर भी था कि नरेन कहीं नाराज न हो जाय। नरेन के तब भी चुप रहने पर वह ही फिर बोला—

"महाराज! मैं कुछ कह रहा हूँ। देहरादून के इस बाहर वाले पल पर बैठा हूँ आपके साथ। क्या आप बता सकेंगे कि इस वक्त आप कौन सी दुनिया में हैं?" कहने के साथ-साथ हर्ष ने अपने दोनों हाथ भी जोड़ दिये

थे। यह उसका अपना ट्रम्प कार्ड था और इस बार नरेन बिना मुस्कराए न रह सका।

"यार, तुम्हें तकलीफ तो काफी हो रही होगी।....लेकिन मैं सब सुन रहा था।"

"खाक सुन रहे थे....साली कितनी मजेदार चीज थी प्रोफेसर भट्टाचार्य जी की फिलास्फी! उसी का सूत्रपात करने जा रहा था और तुमने साले एकदम मूड चौपट कर दिया।"

हँसा भी था नरेन इस बार और हर्ष की ओर थोड़ा खिसक भी आया था।

"फिलास्फी।....अच्छा तू भई चालू रह। वैसे मेरी फिलास्फी....।"

"सब जानता हूँ यार, तेरी मेरी उसकी सबकी फिलास्फी जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि दुनियाँ में ज्यादातर लोग ऐसे हैं जिनके पास कोई जीवन दर्शन नहीं है और कि बिना जीवन दर्शन के आदमी किसी भी टेण्डर कैरेक्टर पर बड़ी जल्दी फिसल जाते हैं; दृढ़ नहीं होते वे। मगर तूने कभी यह भी सोचा है नरेन, कि अब तुझे देखकर मुझे भी हैरानी होने लगी है।" इस बार हर्ष गंभीर हो गया था। नरेन थोड़ी देर रुका रहा उसके बाद उसने हर्ष के कंधे पर धीमे से हाथ रख दिया। हर्ष ने महसूस किया, इस बार नरेन के पंजे में कुछ दम है और कंधा भी थोड़ा बोझिल हो गया है।

"हर्ष!" नरेन के होंठ धीरे से हिले लेकिन तुरन्त ही फिर से शान्त हो गए। ऐसा लगता था जैसे वह अपने अन्तर की सबसे घनीभूत वेदना को इस क्षण समूची प्रामाणिकता के साथ कह डालना चाह रहा हो लेकिन ऐसा करते हुए उसे उस वेदना से एक जोरदार जंग करनी पड़ रही हो। एक मुद्दत से निर्विकार चेहरे पर कुछ रेखाएँ खिंच आयी थीं।

"तुम मुझे बच्चों की तरह बहलाकर यहाँ ले आए हो हर्ष, लेकिन क्या तुम सोचते हो, मैं भी इसी तरह तुम्हारे साथ चला आया हूँ?" नरेन इस बार गंभीर तो था ही, सरल भी बहुत हो गया था इस दम। हर्ष को

लगा कि शायद उसकी जिन्दगी में आज से पहले इतना नाजुक क्षण कभी नहीं आया है। वक्त के साथ पूरी-पूरी ईमानदारी निभाते हुए हर्ष ने नरेन की ओर देखा और फिर अपना दायाँ हाथ नरेन के कन्धे पर रख दिया। नरेन को देख रहा था वह, अभी भी। लगता था इस क्षण बोलने का अधिकार उसे नहीं है।

नरेन ने हर्ष की आत्मीयता में से अपने प्रश्न का उत्तर पा लिया था। पिघले हुए शीशे की तरह बहने लगा फिर वह; खण्ड-खण्ड।

"बहने की बात करते हो हर्ष, पहाड़ों के पास आकर देखोगे, हर सरिता को ऐसा ही पाओगे। जानते तो हो न, ये नदी यहीं पैदा हुई है। पानी है। सूख जाती है। रास्ता बन जाता है। लेकिन तुमने कभी यह भी सोचा है हर्ष, अगर यह सरिता जम जाय तो फिर कौन सा रास्ता बनता है?" नरेन कह रहा था, हर्ष सुन रहा था।

"हैरान मत होओ मेरे दोस्त, हैरान मत हुआ करो। और···" नरेन ने अपनी आँखें ऊपर उठा दी थीं। कोई दृढ़ता थी जो हर्ष की आँखों में तरल हो गई थी लेकिन इस वक्त उसने नरेन से आँखें मिला रखी थीं।

"मेरे चैन की फिकर मत करो हर्ष। मुझे कभी चैन नहीं मिलेगा अब।" कहने के बाद नरेन को लगा, अब वह हर्ष से उतनी ही आसानी से आँखें नहीं मिलाए रख सकता।

"अकलमन्द आदमी की एक ही ट्रेजिडी है हर्ष! जब उसे यह मालूम हो जाता है कि यह दुनियाँ अपनी ही रफ्तार से चलती चली जाती है। न उसके जिन्दा रहने से इस दुनियाँ पर कोई असर होने वाला है और न उसकी मौत ही इस दुनियाँ में कोई फर्क ला सकती है। तब वह बौखला जाता है और अपना सब कुछ लगा देता है उन हरकतों को करने में, जिससे इस दुनियाँ पर उसका थोड़ा बहुत असर साबित हो सके। होता कुछ नहीं, इधर खिसकाओ, उधर खिसकाओ, नीचे ठेलो, ऊपर फेंको। दुनियाँ वहीं की वहीं रहती है और वह आदमी इसी चक्कर में खत्म हो जाता है। लोग उदार होते हैं और मान लेते हैं कि अमुक ने दुनियाँ को इधर से उधर

कर दिया।

तुम्हें पता नहीं हर्ष, यह एक बहुत बड़ा सच है, सूरज जितना। और तीखा भी। यह सच आदमी के अन्दर होता है। दुनियाँ भर की किताबें पढ़ो, हर किताब के सच को, बाहर के सच को, इस एक अन्दर के सच से आइडेन्टीफाई किया जा सकता है।

लेकिन हर्ष, सूरज में रोशनी के अलावा तपिश भी होती है। वह जलाता भी है। मुझे ऐसा लगता है हर्ष जैसे मैंने एक सूरज निगल लिया हो और उसकी पैनी-पैनी किरणें मेरे पेट में अभी भी बाकी हों। शायद वे हमेशा रहें, मेरे ही अन्तर को सालते हुए। मैं अन्दर से खुरदरा और एक मायने में कमजोर भी हो गया हूँ। जिन्दगी भर किसी और झूठे सच से कोई भी समझौता समझो मैं नहीं कर सकूँगा और शायद अपने अन्दर के तीखेपन तथा तिलमिलाहट से कभी मुक्त न हो पाऊँ मैं। लेकिन...."

नरेन इसके बाद चुप हो गया था और फिर थोड़ी देर बाद पुल से नीचे उतर भी पड़ा था।

"कोई ज्यादा हर्ज न हो तो हम लोग चलें ?" नरेन ने ही पूछा था और हर्ष भी नीचे उतर पड़ा था।

रात भी हो चली थी और कोहरा भी घना होने लगा था। वे दोनों चुपचाप काफी दूर तक चलते रहे। बिना बोले। दिग्विजय टाकीज पर आकर घर की ओर जाने के इरादे से वे लोग मुड़ चुके थे, तभी नरेन बोला था—"आज मैं खाना नहीं खाऊंगा हर्ष !"

हर्ष ने सुन लिया था, चुपचाप।

१७

सुबह ही सुबह नरेन इतनी जल्दी जाग गया, उसे खुद आश्चर्य हुआ। उठकर चारपाई पर बैठ गया वह। सर्दी थी सो कम्बल लपेट लिया।

उसे सोचते रहने का कोई खास मौका नहीं मिला। दरवाजा हल्के से धक्के से ही खुल गया था और रीता अन्दर आ गई थी।

"जाग गए भैया! अब कैसी तबियत है?"

"एकदम अच्छी! क्यों, क्या कह दिया हर्ष ने?....अरे मुझे कुछ हुआ थोड़े ही था।" नरेन खिलखिला कर हँस पड़ा। वह जानता था कि उसने रात को जो खाना नहीं खाया था तो हर्ष को कुछ जरूर ऐसा-वैसा कहना पड़ा होगा सबसे। रात को किसी ने परेशान नहीं किया था। वह आकर चुपचाप सो गया था और उसे किसी ने नहीं छेड़ा था।

"नहीं-नहीं ! कोई...."

"कुछ भी नहीं रीता !....तुझे और समझदार होना चाहिए था। अच्छा मेरी चाय ?" नरेन बड़ा लाइट मूड में है, यह देखकर रीता को आन्तरिक खुशी हुई।

"अभी लो।" कहने के तुरन्त बाद वह दरवाजे से बाहर निकल गई। नरेन ने चैक किया कि जाते वक्त रीता के पैरों में अधिक आवेग था।

थोड़ी देर बाद चाय लेकर ऊषा आई।

"अब कैसे हैं आप ?" शब्दावली और ऊषा की मुद्रा देखकर नरेन चौंक पड़ा। रुक कर बोला, "ठीक हूँ।....क्या हुआ था मुझे ?" कहते-कहते नरेन कुछ रूखा हो आया था। हाथ बढ़ाकर चाय का प्याला ले लिया और सिप करने लगा।

"ईश्वर करे आपको कुछ हो भी न,...कभी।"

नरेन इस बार फिर चौंका था। अबकी बार उसने ऊषा को गौर से देखा।

"चाय में चीनी कम है।" उसने एक लंबा घूंट भरते हुए कहा था।

"चीनी ! ओह ! तब रुकिए," और ऊषा हड़बड़ाती हुई तेजी से बाहर चली गई थी। नरेन ने एक और लंबा घूंट भर कर प्याले की शेष चाय भी सुटक ली। उसे लगा कि इस बार चाय को इतनी जल्दी पी लेने के बाद चेहरा गले तक कुनकुना हो गया है।

पहले सहस्रधारा चला जाए या डाक पत्थर, नरेन ने इस बहस में भाग नहीं लिया था। जब ऊषा की माता जी ने आज मसूरी ही घूम आने की सलाह देकर झगड़े का निपटारा किया था, तब भी उसने कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया था। और जब वे लोग देहरादून से मसूरी को रवाना भी हो चुके थे तब भी कपड़ों आदि के बारे में उसने कोई रुचि नहीं ली थी।

टोल-टैक्स देने के लिए जब बस रास्ते में रुकी तब गिनती से उसे पता चला कि वे लोग चार आदमी हैं और इस हिसाब से हर्ष ने छः रुपये कण्डक्टर को और दिये हैं। बस रुकी है, तब तक चाय या काफी ही पी लेने के बारे में शायद रीता ने कहा था लेकिन अब जब वह काफी पी रहा था तो इस क्षण उसे याद था कि काफी पीने की च्वाइस ऊपा की थी।

साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी काली सड़कें पहाड़ियों की गोद में किसी तिलिस्म के बसे होने जैसा एहसास फिर कराने लग गई थी। वह देख रहा था कि हर्ष और रीता दोनों, पहाड़ियों के नीचे इन्हीं चक्करदार सड़कों पर आ-जा रही टैक्सी, ट्रक और कार तथा बसों को काफी दूर-दूर तक देख रहे थे।

एक बार मोड़ पर नरेन ने भी नीचे झाँक कर देखा। काफी तीखी कगार और उस पर तिरछे उगे हुए पेड़ों के अतिरिक्त उसे कुछ और दिखाई नहीं दे रहा था। अगले मोड़ तक वह तमाम कगारों को ही देखता रहा जो काफी शार्प थीं और बड़ी फूहड़ सी लग रही थीं। मोड़ पर की तेजी में उसे लगा जैसे बस सड़क पर से उतर कर एक बहुत ही भुरभुरी कगार पर उछल गई है और थोड़ी ही देर बाद वह कगार ढहकर""।

इतने सर्द मौसम में उसे पसीना आ गया था अपनी कल्पना पर। रूमाल निकालकर उसने घबराहट को चेहरे पर से एकदम पोंछ देना चाहा। तभी उसे ध्यान आया कि कहीं उसकी अतिरंजना पर कोई ध्यान तो नहीं दे रहा! बगल की सीट पर देखा। दूसरी ओर की खिड़की से उन रूखे पहाड़ों को बड़े गौर से देख रही थी ऊपा। उसे नहीं देख रही है वह, जानकर उसे काफी राहत मिली और तब उसने अपनी निगाह आगे की सीट पर उठा दी। हर्ष और रीता भी वैसे ही बैठे हुए थे।

जैसे-जैसे वे ऊपर पहुँचते जा रहे थे, और अधिक घने बादल उनसे टकराते जा रहे थे। वे पूरी तरह से कोहरे में घिर गए थे। पूरी बस लगता था अन्दर से भीग गई हो। नरेन ने देखा, उधर की सीट पर ऊपा ने खिड़की का शीशा चढ़ा दिया था। अन्दर, अपने तरफ की खिड़की उसने

भी बन्द कर ली।

"कान बाँध लो नरेन, नहीं तो सरदी लग जाएगी।" हर्ष ने पीछे मुड़कर उसे देखा था।

"हाँ, हाँ।" कहते हुए नरेन ने मफलर को गले से निकालकर कानों को बाँधने के लिए पीछे से निकाला, देखा, ऊषा उसे ही देख रही थी। बड़ी सीरियस नजर आ रही थी। दो सैकिण्ड नरेन भी उसे देखता रहा तो ऊषा के चेहरे पर मुस्कुराहट उभर आई। नरेन फौरन नीचे देखने लगा और हड़बड़ाहट में उल्टी तरफ से मफलर को कानों पर लपेटने लगा।

"बस, हम लोग आ ही गए मसूरी। क्यों भैया?" बोलते हुए ऊषा हर्ष की ओर मुखातिब हो गई थी।

१८

बहुत देर तक माधुरी सोचती रही। पत्र नरेन भैया को लिखे या रीता को ?

घर के सब लोग शायद सो गये थे लेकिन माधुरी को इस वक्त तक नींद नहीं आई थी। बहुत दिन हो गए भैया को गए हुए, अब तक कोई खबर नहीं मिली। रीता ने भी नहीं लिखा कि आखिर अब तक कुछ हुआ या नहीं ? उसने तो चलते वक्त रीता से कहा भी था, "ज्यादा खुश मत हो जाओ रीता, प्राब्लम इतनी सीधी नहीं है।" रीता सिर्फ़ मुस्कुराई थी उस वक्त।

माधुरी रीता को ही पत्र लिखने बैठ गई फिर।

मेरी अच्छी रीता !

उम्मीद है दिन खूब हँसी-खुशी में जा रहे होंगे। मैं भी ठीक हूँ। हर तरह से ठीक। थोड़ी सी चिन्ता जरूर है, तुम्हारी ओर से। तुमने पत्र जो नहीं डाला है अभी तक। कितने दिन हो गए तुम लोगों को गए हुए? शायद तुम भूल गई होगी रीता, भले यहाँ हूँ मैं, लेकिन मेरा मन हरदम तुम लोगों के साथ ही है। अच्छा, जैसे ही मेरा यह पत्र तुम्हें मिले, फौरन एक पत्र डालना और उस पत्र में अब तक पत्र न डाल पाने के लिए क्षमा जरूर माँगना, नहीं तो तुम्हें माफ करना मुश्किल हो जाएगा मेरे लिये। समझीं।

आधी रात हो चुकी है रीता। सब सो रहे हैं, पता नहीं तुम....। खैर मैं तो बजाय सोने के इस वक्त तुम्हें लिख रही हूँ। तुम लोगों को गए हुए वैसे तो बहुत कम समय हुआ है फिर भी मुझे ऐसा लगता है जैसे तुम लोगों को गए हुए वर्षों बीत गए। सच, अपने आसपास को देखकर भी ऐसा ही लगता है रीता! भला कोई इतने ही दिनों में इतना सब कुछ बदल सकता है कहीं!

मैं झुंझला नहीं रही हूँ रीता! पता नहीं तुम्हारे पास अब तक कुछ बदला या नहीं, यहाँ तो वाकई बहुत कुछ बदल गया है। अच्छा हो कि वहाँ भी कुछ बदला हो। तुम कुछ कर पाई होवो मेरे भैया के लिए रीता, तो इससे ज्यादा खुशी की बात मेरे लिये और कोई नहीं होगी। अगर भैया में कुछ चेन्ज हुआ होगा, तब तो रीता, तुम्हारा एहसान मानना ही पड़ेगा।

खैर। जो कुछ भी मैं तुम्हें लिख रही हूँ, यह सिर्फ़ तुम्हारे लिए ही है। भैया में अगर कोई चेन्ज न आया हो तो उन्हें कुछ भी मत बताना।

ग्वालियर से मामा जी की चिट्ठी आयी है। वे सब कुछ जानते हुए भी हम लोगों पर नाराज हो गए हैं। वैसे उनका कहना भी ज्यादा गलत नहीं है। पिछले दो साल से तो टाल ही रहे हैं, यह तीसरी बार भी हम लोगों ने टाल दिया। मामाजी की सख्त हिदायत थी कि इस बार वे कुछ नहीं सुनेंगे। साल में सिर्फ़ कुछ दिनों के लिए यहाँ कैम्प आता है। कितने लोगों

को तो उससे अपनी आँखें वापस मिल जाती हैं। जैसे ही उनकी चिट्ठी मिले, हम फौरन पिता जी को लेकर वहाँ पहुँच जायें। लेकिन उन्हें गुस्सा इसी बात का है कि किसी को भी कोई खास फिकर नहीं है उनके प्यारे जीजाजी की। इस बार भी लेकर नहीं पहुँचे और कैम्प फिर उठ गया।

तुमसे क्या छिपा है रीता, क्या हम पिता जी को फिर से देखते हुए नहीं देखना चाहते ?····लेकिन····

मैं तुमसे कह भी क्या सकती हूँ रीता, कोई बिन्दु कल किस दिशा में होगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। दिशाहीन सा दिखता है लेकिन कभी भी कोई बिन्दु अदृश्य नहीं होता। कल भैया के प्रोफेसर डा० विनय का नौकर आया था, सरिता का नौकर। तुम्हें भी जानकर दुःख होगा रीता, सरिता आजकल कानपुर के टी० बी० सैनिटोरियम में एडमिटेड है।

जब से मैंने सरिता की इस हालत के बारे में सुना है, मैं एक भयानक खतरे की संभावना में घिर गयी हूँ। सरिता और नरेन के बीच की गुत्थी मेरे लिये क्या, शायद सबके लिये ही एक पहेली ही होगी रीता····भैया तो बिल्कुल ठीक-ठाक है ? तुम मेरा यह पत्र पाते ही मुझे एक टेलीग्राम कर देना, मुझे काफी घबराहट हो रही है।····

तुम्हारा तार और चिट्ठी मुझे दोनों ही मिलने चाहिए। कुछ न मालूम रहने पर मेरी हालत क्या होती है, रीता, तुम्हें तो समझना चाहिए। बात मेरी कतई समझ में नहीं आती। पता नहीं क्या हो गया है, तुम्हारे जाने के बाद से अब तक मैं मीना को भी लगातार दो पत्र लिख चुकी हूँ, लेकिन उसने कोई जवाब नहीं दिया ! सुना था उसे कोई डिलीवरी होने को थी। कहीं वह····।

नहीं रीता, ऐसा नहीं हुआ होगा। मैं तो खामखा घबरा रही हूँ। मीना सब कुछ सह सकी होगी, मुझे पूरी उम्मीद है। ईश्वर करे वह बिल्कुल ठीक हो।

पपी मर गया है रीता ! तुम्हें याद तो है न, बचपन में जब हम लोग खेला करते थे आँगन में, तो दिन में भी अक्सर किसी भारी भरकम जानवर

की परछाईं को मुंडेर पर कूदते देख कर कितना डर जाते थे हम ! कितने बन्दर आते थे छत पर लेकिन हमारे पपी ने उन बन्दरों के छक्के छुड़ा दिये थे रीता । क्या मजाल कि आज भी कोई बन्दर छत पर आ जाए ।

और जब छत पर बैठकर हम लोग दूर ताका करते थे तो बतासो चाची का आँगन देखकर कितने खुश हुआ करते थे । सबसे बड़ा आँगन था उनके घर में । गेंदा, सूरजमुखी और कनेर के अलावा बोगन-विलिया के फूल ही फूल नजर आते थे उनके आँगन में । अब तो खैर घर के पीछे बगीचे में ही उन्होंने सब फूलों को पहुँचा दिया है । आँगन में तो, अब जब कभी ऊपर छत पर चढ़कर देखती हूँ, चाची का इकलौता अशोक कभी-कभार दिखाई दे जाता है । उस घर में एक दुर्घटना हो गई है, चाची की बहिन का लड़का आया हुआ था इन्हीं दिनों, परसों गुजर गया वह ; यहीं । जवान होता हुआ लड़का था रीता, चल बसा ।

सच रीता ! कितना कुछ नहीं बदल गया इन थोड़े से ही दिनों में ? किस्मत अगर कोई चीज होती भी हो तो होती बड़ी नटिनी है । क्या-क्या नाटक नहीं रचा देती यह ? नरेन भैया ने आज से दो साल पहले रज्जन भाई साहब से सिर्फ इस बात पर दोस्ती खत्म कर दी थी कि जिस लड़की को लेकर रज्जन घर बसाना चाहते थे, वह लड़की नरेन भाई साहब की निगाहों में कतई अच्छी नहीं थी और उनके मना करने के बावजूद रज्जन भाई साहब उस लड़की को लेकर घर में बैठ गए थे । तुम सोचोगी तो पता नहीं तुम्हें कैसा लगे रीता, कि जिस लड़की पर रज्जन भाई साहब को बहुत ज्यादा भरोसा और विश्वास था, वह उनकी तमाम ईमानदारी के बावजूद घर से भाग गई । कल बड़े भैया कह रहे थे कि रज्जन पागल हो गया है । उसकी फैक्ट्री जहाँ वह काम करता था, ठप्प हो गई है और कोई दो हजार के करीब उसका फण्ड मिलने वाला था उसे, फैक्ट्री के मैनेजर ने दाब लिया है ।

कोई ईमानदार आदमी किसी की बेईमानी सह कहाँ पाता है, रीता । रज्जन भाई साहब का सा आदमी पागल नहीं होता तो और क्या होता ?

कोई एक ही बेईमान थोड़े ही है अपने हिन्दुस्तान में। हाँ, भैया को बता देना कि जौनपुर डिग्री कालेज से एक लिफाफा और आया है। भेज इसलिये नहीं रही हूँ कि भैया अगर अभी भी पहले की ही तरह हैं तो यह पत्र भी उनके लिये निरर्थक होगा। फिर से लिखा है उन लोगों ने कि आकर ज्वाइन कर लीजिए, लेकिन मिलेगा आपको ढाई सौ ही। हालाँकि दस्तखत चार सौ रुपये पर करना होगा। विद्रूपता की भी कोई हद होती है रीता !

भई बहुत लम्बा हो गया लैटर, अब बन्द करती हूँ, इस आशा के साथ कि तुम्हें अपने मिशन में पूरी-पूरी सफलता मिली होगी और तुम जल्दी ही रूपा को लेकर हमारे यहाँ आओगी। समझी भाभी !

—तुम्हारी बहिन
माधुरी

माधुरी ने पत्र लिख लेने के बाद कागज को तहाया और फिर एक खाली लिफाफे में रखकर बन्द कर दिया। कल इस पर टिकट लगाकर पोस्ट कर दूँगी, सोचते हुए उसे लगा कि अब उसे बेचैनी के मुकाबिले कुछ राहत है।

१९

एक नदी उसके पैरों के पास फूट पड़ी है और यहीं कहीं नीचे उतर कर इन पहाड़ियों में गुम हो गई है, नरेन ने सोचा। पहले जब उन लोगों का टूर आया था तो लाल टिब्बा की चोटी के इस ओर नरेन के पीछे सरिता आकर खड़ी हो गई थी। एक बड़ा सा ग्लैशियर उसकी पीठ में आ लगा। पीछे मुड़ा। सरिता मुस्कुरा रही है, जैसे एक साथ दो रसगुल्ले गपक लिये हों।

सोचकर उसे बड़ी घबराहट सी होती है और उसी हड़बड़ाहट में वह पीछे मुड़ जाता है। पता नहीं ऊषा कब से उसके पीछे खड़ी थी।

नरेन को लगा जैसे उसके खून में एक सुरसुरी सी पैदा हो गई है।

२०

नल की तेज धार उसे सर से नीचे तक चीर गई है, अचानक नरेन को महसूस हुआ। बाथरूम से लगे कमरे में बैठे लोगों की बातें उसे बिल्कुल साफ-साफ सुनाई पड़ रही थीं।

ऊषा की आवाज अनजाने ही तेज हो गई थी, "रीऽता भाभी! मानो या न मानो सही लेकिन मैंने इस अनुभव को कभी गलत नहीं माना। हमेशा मुझे यही सच लगता रहा रीता, कि सौन्दर्य अपने आप में भले निहायत कमजोर चीज है लेकिन उसमें एक गुण तो जरूर है। वह सामने वाले को और भी निर्बल कर देता है, सामने वाला कितना ही बलशाली और कठोर क्यों न हो। लेकिन रीता, मुझे आश्चर्य ही नहीं अफसोस भी है, भारी अफसोस। नरेन के अन्दर कुछ ऐसा जरूर है जिसमें अब सौन्दर्य भी कोई

फर्क नहीं ला सकता। देखने में मैं बुरी नहीं रीता, यह मैं अपने आप कह रही हूँ। मुझे इसका पता है""मुझे अफसोस है रीता, मुझे अफसोस है""

और ऊषा की सिसकियाँ सुनते हो नरेन को लगा जैसे कोई तेज-तेज घूमने वाली धारदार चीज उसके अन्दर अब और भी ज्यादा तेजी से घूमने लगी है और उसके अन्दर के कटाव और भी बढ़ते जा रहे हैं।

२१

पेट को कस कर पकड़ रखा था नरेन ने। बड़ी देर तक वह दर्द से छटपटाता रहा, फिर उसने अपनी दोनों आँखें बन्द कीं और उस काली झील के अन्दर एक जोरदार छलांग लगा दी।

सारा शहर जैसे धुएँ की पर्त में गुम हो गया था या फिर नरेन की आँखों में ही कोई अजनबीपन उतर आया था जो उसे अपना शहर ही पहिचान में नहीं आ रहा था। इस जगह कोई फैक्ट्री थी जो हमेशा धुआँ उगलती थी और हर घंटे चीखती थी। काफी देर से वह यहाँ अपना पेट

पकड़े खड़ा है लेकिन यहाँ उसे कोई हरकत नजर नहीं आ रही। सब कुछ जड़ हो गया क्या ?

धीरे-धीरे चलकर अपने मुहल्ले में दाखिल हो गया फिर वह। मुहल्ले का एकमात्र बगीचा एकदम खामोश पड़ा था और पूरे मुहल्ले पर एक अजीब सी मुर्दनी छाई हुई थी।

किसी अंधे भिखारी की तरह भटकता हुआ वह अपने घर के दरवाजे तक पहुँच गया था। उसके मकान की दीवारों से सड़े प्याज जैसी बदबू झर रही थी।

हाथ लगाने से दरवाजा खुल गया था और वह चुपचाप अपने पिता के कमरे की ओर बढ़ गया था। शायद 'वे' सो रहे थे।

उसे जोरों की प्यास महसूस हुई और उसने पिताजी के सिरहाने रखा लोटा अपने मुँह से लगा लिया।

कोई इस कमरे में आ रहा था।

"माँ!" उसने कहना चाहा लेकिन उसे लगा जैसे उसके अन्दर उमड़ता-घुमड़ता तीखा कुछ अब उसके गले में आकर फँस गया है।

चाहा कि गले को सहला ले, लेकिन अपने हाथ को गरदन तक ले जाने के बीच वह तेजी से चौंक पड़ा।

उसकी गरदन बाहर से भी जकड़ी हुई थी।

○ ○ ○

दयाशंकर

जन्म : १७ जनवरी १९५५, करहल (जिला मैनपुरी)

एम० एस-सी० (प्योर मैथेमेटिक्स) इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र।

अभी तक चार-पाँच कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

तीखा सूरज पहला उपन्यास है।

दूसरा उपन्यास 'अकेले आदमी का सफर' शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।